Thearyasamaj.org

ओ३म्

आर्य जगत्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 05 जुलाई 2015

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र

सप्ताह रविवार 05 जुलाई 2015 से 11 जुलाई 2015

द्वि.आ.कृ. 04 ● वि० सं०–2072 ● वर्ष 58, अंक 27, प्रत्येक मगंलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 192 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,116 ● पृ.सं. 1–12 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

एल.आर.एस. डी.ए.वी. अबोहर ने मनाया 43वां स्थापना दिवस

एल.आर.एस. डी.ए.वी. सी. सै. मॉडल स्कूल का 43वां स्थापना दिवस विद्यालय प्रांगण में श्रद्धा व उल्लास के साथ मनाया गया। इस अवसर पर लाला लाजपत राय सेतिया परिवार से उनकी बेटियाँ डॉ श्रीमती सरोज मिगलानी, श्रीमती सुदेश परुथी, डॉ. सुशील रत्न मिगलानी, स्थानीय प्रबंधक समिति के सदस्य श्री फकीर चंद गोयल, डॉ. राजिन्द्र गिरधर डॉ. आदर्श विशेष रूप से उपस्थित थे व यज्ञ के यजमान रहे।

यज्ञ शाला में उपस्थित सभी विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए श्रीमती सुदेश परुथी ने कहा कि गुरु/शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है हमें सदैव गुरुजनों की आज्ञा का पालन करना चाहिए तभी हम जीवन में उच्च स्थान को प्राप्त कर सकते हैं। डॉ. सुशील रत्न मिगलानी ने विद्यार्थियों को ए.बी.सी के माध्यम से जीवन में अलग–अलग गुणों को रोचक ढंग से बताया। उन्होंने कहा कि विद्यार्थी जीवन में श्रेष्ठ श्रोता बनना सीखना होगा तभी हम जीवन में शिक्षा को पा सकते हैं।

वैदिक विदुषी डॉ. श्रीमती सरोज मिगलानी द्वारा प्राणायाम का रहस्य व ओ३म् का उच्चारण संबंधी प्रकाश डाला गया।

धर्म शिक्षक अशोक शर्मा शास्त्री जी द्वारा पवित्र वेद मंत्रों का उच्चारण किया गया व विद्यालय व सेतिया परिवार के उत्थान हेतु प्रार्थना व शुभाशीष दी गई। संगीत अध्यापक दिलीप माथुर व वाद्य वृन्द द्वारा भजनों को गायन किया गया।

जमा–एक कक्षा व जमा कक्षा के कामर्स खण्ड के उन विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया जिन्होंने राष्ट्रीय स्तर के कामर्स टेलेंट सर्च परीक्षा (जनवरी–2015 में आयोजित) में अपना मैरिट स्थान प्राप्त किया। उनमें जमा एक कक्षा के नमन सिगला, निधि सिंघल, रितिक खंदेरिया, जमा दो कक्षा की कु. साक्षी मित्तल मा. कुनाल दुरेजा, व माधव सिंगला शामिल रहे। प्राचार्या श्रीमती कुसुम खुंगर द्वारा सेतिया परिवार आए हुए अतिथियों का धन्यवाद प्रेषित किया व विद्यार्थियों के उज्जवल भविष्य हेतु शुभाशीष दी।

डी.ए.वी. जींद में हुआ उपनयन संस्कार समारोह

डी.ए.वी. विद्यालय जींद में नव प्रवेश पाने एल.के.जी. के विद्यार्थियों के लिए 'उपनयन संस्कार समारोह' का आयोजन किया गया। इस अनुष्ठान का शुभारंभ यज्ञ हवन से हुआ। यज्ञ में पुरोहित के रूप में विद्यालय के आचार्य श्री रोहताश शास्त्री जी ने वैदिक मन्त्रोच्चारण के साथ आहुतियाँ डलवाई। समारोह में उपदेशक के रूप में स्वामी रामवेश जी ने शिरक्त की। सभी शिक्षणगण व अभिभावकों ने पुष्पवर्षा कर बच्चों को शुभाशीष दिया। समारोह में विद्यालय के स्थानीय प्रबन्धक समिति के सदस्य श्री विरेन्द्र लाठर जी ने बच्चों को अपना आशीर्वाद दिया। स्वामी रामवेश जी ने उपनयन संस्कार का महत्व बताते हुए प्रेरित किया कि यह वह समय है जब बच्चा आचार्यगण के साथ जुड़ कर अपनी शैक्षणिक, आध्यात्मिक व आध्यात्मिक व आत्मिक यात्रा आरंभ कर कर परिपक्व नागरिक बनाने की ओर अग्रसर होता है। जिससे निश्चितत: एक स्वस्थ, सुदृढ़ समाज एवं राष्ट्र का निर्माण होता है। विद्यालय के प्राचार्य श्री हरेश पाल पांचाल जी ने भी अपने सम्बोधन में अभिभावकों को कहा कि आज के इस भौतिकतावाद के युग में परिवार एवं विद्यालय के संयुक्त प्रयासों के फलस्वरूप ही एक बालक वांछित विकास सुनिश्चित हो सकता है। प्राचार्य जी ने कहा कि आज के युग में सबसे बड़ी आवश्यकता है कि हम वैदिक मूल्यों का आचरण करते हुए वर्षों पुरानी संस्कृति को बचाएं और अपने बच्चों में अधिकाधिक संस्कारों का समावेश करें। कार्यक्रम के सफल आयोजन पर प्राचार्य जी ने कार्यक्रम में उपस्थित अभिभावकगण अतिथिगण एवं समस्त स्टाफ का आभार व्यक्त किया। कार्यक्रम का समापन शान्तिपाठ व प्रसाद वितरण के साथ हुआ।

डी.ए.वी कोटा में मनाया गया आर्य समाज स्थापना दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, कोटा के प्रॉगण में आर्य समाज स्थापना दिवस के उपलक्ष्य में देवयज्ञ का आयोजन किया गया। यज्ञ की मुख्य यजमान प्राचार्या श्रीमती सरिता रंजन गौतम ने विद्यालय परिवार के 150 सदस्यों के साथ विद्यालय के धर्म शिक्षक शोभाराम आर्य के ब्रह्मत्व में पवित्र वेद मन्त्रों के साथ आहुतियॉ प्रदान कीं। इस अवसर पर शोभाराम आर्य ने नव संवत्सर के महत्व एवं काल गणना का परिचय दिया। प्राचार्या सरिता रंजन गौतम ने नववर्ष की शुभकामनाओं के साथ–साथ गतवर्ष की उपलब्धियों की चर्चा करते हुये उन्हें आगे भी दोहराने की बात कही तथा शैक्षणिक व सहशैक्षणिक गतिविधियों में स्कूल का नाम रोशन करने वाले विद्यालर्थियों और शिक्षकों को बधाई देते हुए उनके उज्जवल भविष्य की कामना की साथ ही नववर्ष पर श्रेष्ठ संकल्प लेकर उनको क्रियान्वित करने की बात कही। कार्यक्रम का समापन प्रसाद वितरण शान्तिपाठ एवं जयघोष के साथ हुआ।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – पूनम सूरी

Thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 05 जुलाई, 2015 से 11 जुलाई, 2015

समित्पाणि शिष्य के उद्गार

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

एतास्ते अग्ने समिधः, त्वमिद्धः समिद् भव।
आयुरस्मासु धेहि, अमृतत्वमाचार्याय।।

ऋषिः **ब्रह्मा**। देवता **अग्निः** छन्दः **अनुष्टुप्।**

● (**अग्ने**) हे यज्ञाग्नि! (**एताः**) ये (**ते**) तेरे लिए (**समिधः**) समिधाएँ [हैं], [इनसे] (**त्वं**) तू (**इत्**) निश्चय ही (**सम् इद्धः**) संदीप्त (**भव**) हो। (**अस्मासु**) हम [इनसे] (**त्वं**) तू (**इत्**) निश्चय ही (**सम् इद्धः**) संदीप्त (**भव**) हो। (**अस्मासु**) हम [ब्रह्मचारियों] में (**आयुः**) जीवन, [और] **आचार्याय** (आचार्य) के लिए (**अमृतत्वम्**) अमरत्व (**धेहि**) प्रदान कर।

● मैं समित्पाणि होकर आचार्य के समीप उपनीत होने तथा विद्याध्ययन करने आया हूँ। अपने हाथ में मैं समिधायें इस निमित्त लाया हूँ कि इनसे मैं अग्निहोत्र करूँगा, समिधाओं को एक–एक कर अग्नि में आहुति दूंगा।

हे यज्ञाग्नि! ये तेरे लिए समिधायें हैं, इनसे तू समिद्ध हो, सम्यक् प्रकार से प्रदीप्त हो। देखो, ये शुष्क समिधायें, जो सर्वथा निस्तेज थीं, अग्नि में पड़कर प्रज्ज्वलित हो उठी हैं। ऐसे ही मुझे भी आचार्य–रूप अग्नि का ईंधन बनकर ज्ञान एवं सत्कर्मों से प्रज्ज्वलित होना है। मैं निपट अबोध–अज्ञानी बालक अप्रज्ज्वलित समिधाओं के समान ही निस्तेज हूँ, आचार्याधीन गुरुकुल–वास करके मुझे ज्ञान की ज्वालाओं से प्रदीप्त होना है।

आचार्य और ब्रह्मचारियों के मध्य में जलनेवाली हे यज्ञाग्नि! तू हम ब्रह्मचारियों को आयु प्रदान कर, हमारे अन्दर जीवन निहित कर। हम यही नहीं जानते कि इस संसार में किसलिए आये हैं और हमें कहाँ जाना है तथा जीवन किस प्रकार व्यतीत करना है। जीवन जीने की कला का बोध तू हमें करा। हे अग्नि! तू गुरुकुल की गुरु–शिष्य परम्परा का उज्ज्वल प्रतीक है। जो समिधाओं का और तेरा सम्बन्ध है, वही घनिष्ठ सम्बन्ध गुरुकुल में गुरु और शिष्यों का है। गुरुकुल के व्रतपालन, गुरुकुल की दिनचर्या, गुरुकुल के ज्ञानाग्नि–समिन्धन, गुरुकुल की कर्मपरायणता, गुरुकुल की तपस्या, गुरुकुल के संयम, गुरुकुल के योगानुष्ठान आदि सबका तू प्रतीक है। हे व्रतपति अग्नि! तुझमें समिधायें डालते हुए हम इन समस्त भावनाओं को अपने हृदय में धारण करते हैं।

हे गुरुकुलीय अग्निहोत्र की अग्नि! जहाँ तू हमें जीवन प्रदान करेगी, वहाँ हमारे आचार्य को अमृतत्व प्रदान कर। हम ही अपने आचार्य को मार सकते या अमर कर सकते हैं। हम तुझ अग्नि में तपकर ऐसे जीवन के धनी बनें कि हमसे आचार्य की कीर्ति चारों ओर फैले। जब कोई हमें गुणी और सत्कर्मनिष्ठ देखकर पूछेगा कि ये किस आचार्य के शिष्य हैं, तब हमारे आचार्य का नाम अमर होगा। हम यदि आचार्य के नाम को अमर करने में किंचिन्मात्र भी कारण बन सकेंगे, तो हम अपने को धन्य समझेंगे। हे गुरुकुल के अग्नि! तुम्हारी जय हो, हे गुरुकुल के पुण्यश्लोक आचार्य! तुम्हारी जय हो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

महामन्त्र

● महात्मा आनन्द स्वामी

पिछले अंक में बात हो रही थी ओम् सारे संसार का प्राण है। ओम् ही भव–सागर से पार लंघानेवाला है। मानव जीवन का आदि–अन्त यही है। ओम् अक्षर के अर्थों पर विचार करें तो इसमें वे सब अर्थ आ जाते हैं, जो परमात्मा के गुणों में आते हैं। परमात्मा सृष्टि–कर्ता, रक्षा–कर्ता, संहार–कर्ता है। ओम् के तीन विभागों–आकार+उकार+मकार से यही प्रकाट होता है। अ=विराट्–नाना प्रकार के जगत् को प्रकाशित करता है। उ=हिरण्यगर्भ–वायु, तेज, चित्। म्=ईश, प्राण, आदित्य, अनन्त। ओम् के अर्थ अनेक है। भक्त और उपासक की जो भावनाएं और कामनाएं हो सकती हैं, उन सबको पूर्ण करने की शक्ति ओम् के अर्थों में निहित है।

ओम् शब्द को लोक परलोक का सहारा बनाया जा सकता है। उपनिषद् में आदेश है– अपनी देह को अधरारणि और ओम् को उतरारणि बनाकर, ध्यान–रूपी मंथन–दण्ड की रगण के बार बार करने से छिपी हुई अग्नि के सदृश उस परमात्मा को देखो...

अब आगे

ओम्–उपासना की विधि यह है–

(यदि केवल ओम् ही के द्वारा परमधाम को पहुँचना हो तो) पहले ऊँची ध्वनि से ओम् का उच्चारण किया जाता है, परन्तु यह ऊँचा उच्चारण मिठास तथा मस्ती से भरा हो, और ओम्–ध्वनि ध्वनित करते हुए यह यत्न करना चाहिए कि वह ध्वनि नाभि से उठकर कण्ठ में आती प्रतीत हो और समझना यह चाहिए कि सारा ही विश्व ओम् उच्चारण कर रहा है; केवल मेरे ही स्थूल शरीर से ओम् की ध्वनि नहीं निकल रही है, सारे विश्व के अन्दर से निकलकर परमात्मा के इस विराट् रूप को पुकार रही है; गोया सारा विश्व उपासक बनकर प्रभु के विराट् रूप को उपास्य जानकर उसी की उपासना में निमग्न है। ऐसी उपासना को एक मात्रावाले ओम् की उपासना कहा जाता है, इसमें स्थूल का अभिमान बना रहता है।

अब दो मात्राओं वाले ओम् का जप शुरू कीजिये– स्थूल शरीर के अन्तर्मुख होने का यत्न कीजिये, और ध्यान हृदय–प्रदेश अथवा भृकुटि में जमा दीजिये। धीरे–धीरे यह अभ्यास जब बढ़ाया जाता है तो ध्यान की पहली परिपक्व–अवस्था प्राप्त होने पर न भृकुटि सामने रहती है न हृदय; अपितु उपासक का प्रवेश सूक्ष्म शरीर में हो जाता है। अब उपासक मानसिक जप कर रहा है। मानसिक जप दो मात्राओं वाले ओम् की उपासना है। यहाँ सूक्ष्म शरीर उपासक है, जिसे तैजस भी कहते हैं, और जिसकी उपासना की जा रही है, उसे हिरण्यगर्भ कहा जाता है।

इससे आगे ध्यान की दूसरी परिपक्व–अवस्था लानी होती है। तब मानसिक जप और भी सूक्ष्म हो जाता है, इतना सूक्ष्म कि जप की बात ही नहीं रहती और केवल ओम् की एक दिव्य–निर्मल ध्वनि या ओम् का ध्यान–सा रह जाता है। यह अकार, उकार, मकार तीनों विभागोंवाले ओम् की उपासना है। इसमें सूक्ष्म शरीर का भी अभिमान नहीं रहता; कारण शरीर (सूक्ष्म मूल प्रकृति ही का नाम है) में उपासक का प्रवेश हो जाता है। तब यही कारण शरीर उपासक है जिसे प्राज्ञ कहा जाता है, और उपास्य ईश्वर है। अभी एक सीढ़ी और आगे है, जहाँ अमात्र विराम रह जाता है और शुभ परमात्मप्राप्ति का अवसर मिलता है। इसका वर्णन पुस्तक का विषय नहीं। अनुभव ने यह बतलाया है कि वास्तविक जप तो वह है, जब उपासक को स्वयं जप करने का यत्न न करना पड़े, अपितु एक स्वभाव–सा हो जाए। वाणी के प्रयोग की आवश्यकता ही न रहे, हृदय में ही ओम् की ध्वनि सुनाई देती रहे। हाँ, कभी–कभी ओम् नाम की ध्वनि का नशा जब अधिक बढ़ने लगता है तो स्थूल शरीर वाणी भी सहसा ओम्–ओम्–ओम् पुकार उठती है। वास्तविक तथ्य यह है कि प्रणव या ओम् मुख द्वारा उच्चारण करने की वस्तु नहीं। हाँ, मानसिक जप का ही इतना अभ्यास बढ़ा लेना चाहिए कि अन्तःकरण ही यह जप करता रहे और वहीं उनकी ध्वनि सुनाई देती रहे और वहीं उसका ध्यान होता रहे। उसी अन्तःकरण में ओम् की ध्वनि तथा ध्यान का वेग जब बढ़े तो उसके परिणामस्वरूप मुख द्वारा भी ओम् की रट अपने–आप लगने लगती है। ओम् के ध्यान से मन बाँधा जाता है, मन की चंचलता मिटने लगती है, और अद्‌भुत तथा दिव्य स्वाद आने लगता है। 'योगदर्शन' में इसलिए कहा है–

तज्जपस्तदर्थभावनम्।

–उस प्रणव==ओम् का जप और उसके अर्थभूत ईश्वर का (भावनम्) पुनः पुनः चिन्तन करना चाहिए।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ईश्वर के नाम ओंकार का वर्णन करते हुए लिखा

Thearyasamaj.org

है– "जो ईश्वर का ओंकार नाम है, सो पिता–पुत्र के सम्बन्ध के समान है, और यह नाम ईश्वर को छोड़कर दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सबसे उत्तम नाम है। इसलिए इस नाम का जप अर्थात् स्मरण, और उसी का अर्थ–विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत् प्राप्त होकर स्थिर हो जिससे हृदय में प्रकाश और परमेश्वर की प्रेमभक्ति सदा बढ़ती रहे।"

निश्चित रूप से ओम् का मानसिक जप हृदय में ज्योति प्रकट करता है, परन्तु यह जप होंठ या कण्ठ से नहीं, हृदय से हो। हृदय द्वारा जप के सम्बन्ध में यह कहा है–

जबहि नाम हिरदय धर्‌यो, भयो पाप को नास।
जैसे चिनगी आग की, पड़ी पुराने घास।।

ओम् शब्द की व्याख्या करते हुए और ओम् की महिमा का गायन करते हुए चित्त भरता नहीं। जी चाहता है कि यह व्याख्या होती ही रहे और इसका गुण–गान होता ही रहे।

तीन व्याहृतियाँ–

गायत्री–मन्त्र–उच्चारण से पूर्व ओम् का प्रयोग आवश्यक है। इसके आगे तीन व्याहृतियाँ हैं– भूः भुवः स्वः। जिस प्राकर ओम् के तीन विभाग सत्–चित्–आनन्द को प्रकट करते हैं, ऐसे ही भूर्भुवः स्वः भी सत्–चित्–आनन्द का वर्णन करते हैं। ये तीनों लोकों की ओर भी संकेत करते हैं। व्याहृति का अर्थ है– विशेष रूप से आहृति अर्थात् सर्व विराट् का बोध (प्रकाश) करने वाली। परमात्मा का विराट् रूप तीनों लोकों में दृष्टिगोचर होता है। इस दृश्यमान संसार को देखते हुए उसकी अद्भुत महिमा प्रकट होती है, और यह अनुभव होने लगता है कि उसी के दर्शन हो रहे हैं–

दर दीवार दर्शन भये, जित देखूँ तित तोय।
कांकर पाथर ठीकरी, भये आरसी सोय।।

और वे भूर्भुवः स्वः व्याहृतियाँ विशेष रूप से प्रभु–महिमा प्रकट करती हैं।

भूः– प्राणाधार, स्वयंभू, सत्, [illegible]–भविष्य–वर्तमान में सदा विद्यमान [illegible]न् का एक नाम है। गायत्री का [illegible]क जब ओम् शब्द के महान् अर्थों [illegible]चार करता हुआ, उसके गुणों [illegible] करता हुआ तब ओम्–जप में [illegible]सूक्ष्म अवस्था तक जा पहुँचा, [illegible]ाक्षात् अनुभव कर लिया कि [illegible] रक्षक है, तब इस रक्षक [illegible]ा वह देखने लगता है कि [illegible]भी तो उसी के सहारे हैं। [illegible]मय है, प्राण से रिक्त [illegible]हीं, और इस प्राण का [illegible]है। क्या कोई प्राण ले [illegible]ा सुन सकता यदि वह [illegible]ा को न फैलाता?

भूः शब्द के अर्थ करते हुए महर्षि दयानन्द **'पञ्चमहायज्ञविधि'** में लिखते हैं– **प्राणयति जीवयति सर्वान् प्राणिनः सः प्राणः प्राणादपि प्रिय–स्वरूपो वा स चेश्वर** एवं– जो सब प्राणियों का जीवदाता है, और प्राण से भी प्यारा है, वह परमेश्वर भूः नामक है। [1. तैति. उप. में भू. से प्राण, भुवः से अपान और स्वः से व्यान लिया है। जीवनदाता होने से प्राण, बचाने वाला होने से अपान, चेष्टा करने वाला होने से व्यान– ये इनके यौगिक अर्थ हैं।]

'बृहदाराण्यकोपनिषद्' (4।4।18) में ब्रह्म को 'प्राणस्य प्राणः' –प्राण का प्राण कहा है।

केन. 1. 2 में कहा– **'स उ प्राणस्य प्राणः' वह प्राण का प्राण है।**

'छान्दोग्योपनिषद्' में यह प्रसंग आता है कि एक यज्ञ में जब प्रस्तोता ने उषस्ति चाक्रायण से पूछा– भगवन्! प्रस्ताव का देवता कौन है? तो उत्तर मिला–

'प्राण' इति होवाच । सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि प्राणमेवाभिसंविशन्ति, प्राणमभ्युज्जिहते। अ. 1.11.5.

–वह स्तुति का देवता 'प्राण' है क्योंकि वे सारे भूत (प्राणी) उसी महाप्रयाण में लीन होते हैं और प्राण से बाहर निकलते हैं।

यहाँ जिस प्राण का वर्णन हो रहा है, प्राणाधार भूः परमात्मा ही तो है। ब्रह्मसूत्र में यही कहा है–

"अतएव प्राणः।" 1.1.33.

–इसलिए यह परमात्मा प्राण है।

वेद भगवान स्वयं आदेश देते हैं–

"देवानां समवर्ततासुरेकः।" ऋ. 10.121.7.

–वह सारे देवताओं का एक प्राण है।

"य आत्मदा बलदाः।" 1.121.2.

–जो प्राण को देने वाला और बल का देने वाला है।

और 'अथर्ववेद' के इस मन्त्र का पाठ कीजिए–

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।। 11।4।1।।

–प्राण (परमात्मा) को नमस्कार है जिसके यह सब वश में है; जो अपनी सत्ता के साथ ही सबका स्वामी है; जिस पर सब–कुछ सहारा रखता है।

वेद में परमात्मा का नाम 'मरुत्' भी आया है, जिसके अर्थ प्राण है। प्राण को ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ कहा गया है। बृहदा. उ. में एक सुन्दर अलंकार इन्द्रियों और प्राण के सम्बन्ध में देकर सिद्ध किया है कि प्राण ही सर्वोत्तम है; ये इन्द्रियाँ प्राण के बिना कुछ भी नहीं। और यह व्यष्टि प्राण भी कुछ नहीं, यदि समष्टि प्राण इसे गति न दे। वास्तव में सारी सृष्टि का प्राणाधार, जीवनदाता परमात्मा ही है, और गायत्री–मन्त्र की पहली व्याहृति में इसलिए उस देवों के देव, परमात्मा को 'भूः' शब्द से पुकारा गया है।

भुवः– गायत्री–मन्त्र की दूसरी व्याहृति भुवः है। 'यजुर्वेद' 36/6 में **'भूर्भुवः स्वः'** ये तीन व्याहृतियाँ गायत्री के साथ आई हैं, गोया इनको मन्त्र ही का एक भाग बतला दिया है। भुवः के अर्थ हैं– दुःखों से बचानेवाला, चित्त, अपान।

यो मुमुक्षूणां मुक्तानां स्वसेवकानां धर्म्मात्मनां सर्वं दुःखमपानयति दूरी–करोति सोऽपानो दयालुरीश्वरोऽस्ति।' [तैतिरीयोपनिषद्, परीक्षाध्याये, अनु. 5 मं. 3 में भी ऐसा ही लिखा है।]

–क्योंकि वह मुक्ति की इच्छा करने वालों, मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है, इसलिए दयालु परमेश्वर भुवः अपान नामवाला है।

–'तैत्तिरीयारण्यक' में भुवः शब्द का अर्थ अपान बतलाया है। भुवः शब्द का उच्चारण करते हुए मन में यह भावना करनी है कि मैं दुःखनाशक भगवान् के दरबार में उपस्थित हूँ और वे प्रभु मेरे दुःख दूर कर रहे हैं।

दुख क्या है?

परन्तु आओ पहले यह तो पता ले लें कि दुःख कहते किसे हैं और ये आते क्यों हैं?

दुःख कहते हैं इष्ट के वियोग को और अनिष्ट की प्राप्ति को। और भी अधिक स्पष्ट करना चाहिए कि प्रतिकूलता ही दुःख है। और ये दुःख भी कितने ही प्रकार के हैं। कुछ दुःख तो ऐसे हैं जिन पर हमारा कोई वश नहीं, परन्तु कुछ ऐसे हैं जो हम स्वयं पैदा कर लेते हैं और जिन पर हमारा अधिकार है; यदि चाहें तो उन्हें स्वयं दूर कर सकते हैं। इस प्रकार के दुःखों को दूर करने के लिए हम भगवान् से याचना क्यों करें?

1. ऐसे दुःखों में पहली प्रकार के वे दुःख हैं जो हम अपने भ्रम से घड़ लेते हैं; जैसे भूत–प्रेत इत्यादि से भयभीत होते रहना और केवल काल्पनिक चिन्ताओं द्वारा अपने तन को दुःखित रखना।

2. दूसरी प्रकार के दुःख ऐसी इच्छाएँ हैं जो पूर्ण न हो सकें– अपनी शक्ति–सामर्थ्य, परिस्थिति से बहुत बढ़–चढ़कर 'शेखचिल्ली' की तरह इच्छाएँ खड़ी कर लेना, और उनके पूरा न होने पर चिन्तित होकर रुदन करना।

3. तीसरी प्रकार के दुःख– झूठे अभिमान में आकर अपने लिए नाना कष्ट सहेज लेना।

4. चौथी प्रकार के दुःख–सृष्टि–नियमों के विरुद्ध, वेद–आज्ञा के विरुद्ध चलकर दुःख पैदा कर लेना। उदाहरण के लिए आधुनिक काल के गृहस्थ–आश्रम को देखिये जो सबसे अधिक दुःखी दिखलाई देता है। ये सारे दुःख मानव के अपने ही बनाये हुए हैं।

(क) वेद ने तो यह आज्ञा दे रखी है कि किन लोगों को गृहाश्रम में प्रवेश का अधिकार है–

ओम् गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रतऽएमसि।
ऊर्जं बिभ्रद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः।। यजु. 3.41.

गृहाश्रम में प्रवेश करने वाला युवक कहता है– 'हे गृहस्थी! मत डरो, मत काँपो, मैं पराक्रम को धारण करने वालों के निकट आया हूँ, तो स्वयं पराक्रम को धारण करके, उदार हृदय, गम्भीर मेधा से युक्त होकर हर्ष–भरे मन के साथ तुम गृहस्थों के निकट आता हूँ।

इस प्रभु–आज्ञा के अनुसार गृहाश्रम में प्रवेश करने वालों में ये गुण होने अनिवार्य हैं–

(1) शरीर में पराक्रम हो। (2) हृदय में उदारता हो। (3) मेधा गम्भीर हो। (4) मन हर्ष से भरा हो।

इस चार गुणों के होने पर लक्ष्मी अपने–आप पग चूमने लगती है। परन्तु आज इन चारों गुणों को न देखकर केवल धन और लौकिक माया ही को प्रधानता दी जाती है, और परिणाम यह है कि जिन गुणों से गृहस्थ को स्वर्गधाम बनाना था, उन गुणों के अभाव अथवा कम होने के कारण वह आश्रम आज नरक कहा जाने लगा है।

(ख) वेद ने कहा था– **ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।।** (अथर्व. 11.16)– "देवता ब्रह्मचर्य और तप से मृत्यु को सदा मार हटाते है।"

परन्तु इस ब्रह्मचर्य के सिद्धान्त को भूलकर मानव ने मृत्यु को तो क्या मार हटाना था, छोटे–मोटे रोगों से तंग आकर और घर के शत–प्रतिशत रोगियों को देखकर गृहस्थ को दुःखों का घर कहना प्रारंभ कर दिया। क्यों जी, ये सारे दुःख मानव ने स्वयं पैदा कर रखे हैं या नहीं?

(ग) वेद ने तो यह आज्ञा दी है कि जब वधू घर में आए तो सास उससे कहे– "तुम महारानी (सम्राज्ञी) बनकर रहो। [ऋ. 10.85.16.] गौ जिस प्रकार सजाए बछड़े को प्यार करती है, ऐसे तुम घर में एक–दूसरे को प्यार करो। [अथर्व. 30.20.2) सदा मीठी वाणी बोलो, जो हितकर हो। [अथर्व. 3.30.2] गृहाश्रम की गाड़ी इक्टठे मिलकर खींचते हुए [अथर्व. 3.30.5] एक–दूसरे के लिए सुन्दर प्रिय वचन बोलते हुए प्रभु की ओर चलो।" इन सारी आज्ञाओं को भुलाकर मानव दुःखी हो उठा है।

(घ) कई सामाजिक रूढ़ियों के बन्धन तथा रिवाज् ऐसे हैं जो मानव को दुःखी कर देते हैं, परन्तु नाक कट जाने के भ्रम में पड़ा वह इन्हें करता है और दुःख भोगता है। ये सभी दुःख मानव की अपनी ही दुनिया है। यदि मानव की हार्दिक इच्छा हो तो वह इनसे छुटकारा पा सकता है। इसके दूर करने के लिए परमात्मा को पुकारने से पूर्व यत्न करना होगा।

शेष अगले अंक में....

aryasamaj.org

वर्तमान जीवन-जगत् को आर्य समाज की आवश्यकता

● डॉ. महेश विद्यालंकार

आर्यसमाज की विचारधारा, सिद्धांत, आदर्श, जीवन मूल्य आदि अपने में उपयोगी व्यावहारिक एवं सर्वांगीण हैं। उसका आधार सत्य, वेद, सृष्टिक्रम और विज्ञान संगत है। आर्यसमाज वैचारिक क्रान्ति, सुधारवादी एवं प्रगतिशील चिन्तन धारा है। आर्यसमाज, मजहब, मत, पंथ व सम्प्रदाय नहीं है। इसका नारा है– **कृण्वन्तो विश्वमार्यम्** सारे संसार को उच्च, दिव्य एवं श्रेष्ठ बनाओ। आर्यसमाज का चिन्तन, जीवन जगत् को सीधा–सच्चा तथा सरल मार्ग दिखाता है। इसकी विचारधारा उलझाती नहीं, अपितु समस्त समस्याओं को सुलझाती है। इसका आविर्भाव देश, धर्म, जाति की रक्षा, मानव निर्माण, विचार परिवर्तन, वेद प्रचार आदि के साथ–साथ ढोंग, पाखण्ड, अज्ञान तथा गुरुडम को मिटाने के लिए हुआ था। इसकी शुरु से भूमिका रही है– जागते रहो, जागते रहो, स्वयं जागो और दूसरों को जगाते चलो। आर्यसमाज के विचार हिन्दुत्व के चिन्तन का सत्य एवं परिष्कृत रूप हैं। आर्य समाज वेद विरुद्ध मान्यताओं–मूर्तिपूजा, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, गुरुड़म, व्यक्तिपूजा, अवैज्ञानिक धार्मिक कर्मकाण्ड, अन्धश्रद्धा, अन्धविश्वास पुजापे–चढ़ावे आदि में विश्वास नहीं करता है। जो सत्य, तर्क युक्त, प्रामाणिक, वेदानुकूल, विज्ञान सम्मत बातें हैं उन्हें प्रचारित करता एवं महत्व देता है। यह निर्विवाद सत्य है कि आर्य समाज सर्वोत्तम विचारधारा का धनी है। इसके पास अमूल्य मौलिक वैचारिक सम्पदा है जो अन्यत्र दुर्लभ है। इसी कारण वह आज भी जीवन्त एवं गतिशील है। यही वेदानुकूल सत्य चिन्तन संसार को सत्पथ की नई दृष्टि और सृष्टि दे सकता है। आर्यसमाज गलत बातों का खण्डन एवं सत्य बातों का प्रचारक तथा प्रसारक है।

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान प्रत्येक क्षेत्र में आश्चर्यजनक आविष्कार एवं चमत्कार नित्य संसार को दे रहा है। भौतिक सुख, भोग–विलास के साधनों के अम्बार चारों ओर लग रहे हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी मानव समाज दु:खों, रोगों, चिन्ताओं, अशान्ति संघर्ष, हिंसा, अत्याचार, लूटपाट आदि की ओर बढ़ रहा है। सर्वत्र उथल–पुथल, कोलाहल तथा कुहराम मच रहा है। मनुष्य मशीन बनकर भाग रहा है। जीवन का मूल तेज़ी से छूट रहा है। आज व्यक्ति बाहर भौतिक दृष्टि से भरा पूरा नजर आता है, आन्तरिक दृष्टि से अशान्त, अतृप्त, चिन्तित, निराश और परेशान नज़र आता है। भौतिकवादी, भोगवादी, देहवादी सोच और धन की, भूख जीवन की स्वाभाविक सहजता, सरलता, मधुरता और मस्ती छीन रही है। अमूल्य जीवन इसी संग्रह और भोग की दौड़ में निकला जा रहा है। अधिकांश लोगों को पता ही नहीं है कि मेरे जीवन का प्राप्त और गन्तव्य क्या है? और... और लालसा आदमी को बेचैन कर रही है। सभ्य और मानवीय मूल्यों से पूर्ण बनने की जगह मनुष्य असभ्य तथा पशुता की ओर बढ़ रहा है। रोज घटनाएं पढ़ सुन और देख रहे हैं? संसार में सभी भौतिक चीज़ें अच्छी से अच्छी बन रही हैं किन्तु इन चीजों का भोक्ता इन्सान पतन, गिरावट व राक्षसवृत्ति की ओर जा रहा है।

आर्य विचारधारा सच्चे अर्थों में मानवनिर्माण की विधि, व्यवस्था और मार्ग बताती है। वेद का अमर सन्देश है **'मनुर्भव'** ओ परमात्मा की श्रेष्ठ सन्तान! सच्चे अर्थ में मानव बनकर इहलोक और परलोक दोनों को संभाल और इनका सुख प्राप्त करके जीवन को सफल बना। इस मनुष्य योनि में ही सार्थक उद्देश्य ढंग से जीना व व रहना आता है। यह अमूल्य एवं दुर्लभ मानव जन्म किसी विशेष मानवजन्म किसी विशेष उद्देश्य, लक्ष्य एवं प्रयोजन के लिए मिला है। यह जीवन परमात्मा का सबसे बड़ा वरदान है। यह नरतन ही प्रभु प्राप्ति और मोक्ष का अधिकारी बना है। वेद का अमर संदेश है **नान्य: पन्था: विद्यतेऽयनाय** = जीवन लक्ष्य प्राप्ति का और कोई मार्ग नहीं है। वैदिक चिन्तन कहता है– शरीर, आत्मा, भोग–योग, भौतिकता–आध्यामिकता, प्रकृति–परमात्मा का समन्वय करके चलो। न हर भूलो न जग भूलो। भौतिक उन्नति के साथ साथ धार्मिक, आध्यात्मिक, नैतिक और वैचारिक उन्नति अत्यन्त आवश्यक है। इससे जीवन–जगत् संभला और सुधरता है। इतिहास साक्षी है कि हमारे ऋषि–मुनि, ज्ञानी, सन्त, महापुरुष आदि सभी के जीवनों में धार्मिकता, आध्यात्मिकता की पकड़ गहरी थी। ऋषिवर देव परमानन्द घन्टों प्रभु–भक्ति से शक्ति लेकर संसार के असत्य, ढोंग– एवं पाखण्ड से लड़ते रहे। महात्मा हंसराज जी के जीवन में दृढ़ आस्तिकता एवं प्रभु–भक्ति थी। वे अपने उपदेशों में जीवन निर्माण के लिए सन्ध्या, स्वाध्याय और सत्संग पर विशेष बल देते थे। आज हमारे जीवनों में आस्तिकता, धार्मिकता आध्यात्मिकता और पवित्रता घट रही है। इसी कारण हमारे जीवन दूसरों के लिए प्रेरक, आदर्श एवं आकर्षक नहीं बन पा रहे हैं। आर्य चिन्तन जीवन–जगत् का सत्यबोध कराता है। आज पठित युवापीढ़ी जीवन लक्ष्य, जीने की कला, संस्कृति और जीवन मूल्यों से भटक व गुमराह हो रही है। खाओ, पीओ और मौज करो की सोच तेजी से बढ़ व फैल रही है। ऐसे में वैदिक चिन्तन युवा पीढ़ी को वैज्ञानिक दृष्टि एवं सोच देकर संस्कारित कर सकती है। युवापीढ़ी का ढोंगी–पाखण्डी गुरुओं सन्तों एवं स्वयंभू भगवानों से मोह भंग हो रहा है। धर्म–भक्ति तथा परमात्मा तीनों पर लम्बा–चौड़ा व्यापार हो रहा है। कोई रोकने–टोकने वाला नहीं है। तेजी से अज्ञानता, अन्धश्रद्धा, अन्धविश्वास, पाखण्ड, गुरुड़म पुजापा–चढ़ावा, व्यक्तिपूजा आदि बढ़ रहे हैं। आज देवी–देवताओं, गुरुओं, महन्तों आदि भक्ति की पूजा बढ़ रही है, असली परमात्मा गौण और छूट रहा है। धर्म तथा भक्ति के नाम पर आडम्बर, प्रदर्शन, दिखावा, शोर–शराबा आदि बढ़ रहा है। धर्म व भक्ति अन्दर की चीज़ थी, उसे व्यापार व बाज़ार में बनाया जा रहा है।

आज विज्ञान का युग है। विज्ञान प्रत्येक क्षेत्र में आश्चर्यजनक आविष्कार एवं चमत्कार नित्य संसार को दे रहा है। भौतिक सुख, भोग–विलास के साधनों के अम्बार चारों ओर लग रहे हैं। इतना सब कुछ होते हुए भी मानव समाज दु:खों, रोगों, चिन्ताओं, अशान्ति संघर्ष, हिंसा, अत्याचार, लूटपाट आदि की ओर बढ़ रहा है। सर्वत्र उथल–पुथल, कोलाहल तथा कुहराम मच रहा है। मनुष्य मशीन बनकर भाग रहा है। जीवन का मूल तेज़ी से छूट रहा है। आज व्यक्ति बाहर भौतिक दृष्टि से भरा पूरा नजर आता है, आन्तरिक दृष्टि से अशान्त, अतृप्त, चिन्तित, निराश और परेशान नज़र आता है। भौतिकवादी, भोगवादी, देहवादी सोच और धन की, भूख जीवन की स्वाभाविक सहजता, सरलता, मधुरता और मस्ती छीन रही है। अमूल्य जीवन इसी संग्रह और भोग की दौड़ में निकला जा रहा है। अधिकांश लोगों को पता ही नहीं है कि मेरे जीवन का प्राप्त और गन्तव्य क्या है? और... और लालसा आदमी को बेचैन कर रही है। सभ्य और मानवीय मूल्यों से पूर्ण बनने की जगह मनुष्य असभ्य तथा पशुता की ओर बढ़ रहा है। रोज घटनाएं पढ़ सुन और देख रहे हैं? संसार में सभी भौतिक चीज़ें अच्छी से अच्छी बन रही हैं किन्तु इन चीजों का भोक्ता इन्सान पतन, गिरावट व राक्षसवृत्ति की ओर जा रहा है।

ऐसे वातावरण में कोई सत्य, वैज्ञानिक, तर्क–प्रमाण युक्त, व्यावहारिक उपयोगी मार्ग दिखा सकता है तो वह शक्ति, क्षमता एवं योग्यता आर्य विचारधारा में है। आर्य समाज को दो कार्य करने पड़ते हैं गलत बातों का खण्डन, दूसरा सही शास्त्र युक्त बातों का दिग्दर्शन कराना। जब भी भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्मग्रंथों, महापुरुषों आदि पर विधर्मी ने अंगुली उठाई, आर्यसमाज उनकी रक्षा के लिए वीरभुजा बन उसके सामने खड़ा नजर आया। आर्य समाज के पास तर्क और अद्भुत विचार सम्पदा है। इस प्रगतिशील, वैज्ञानिक युग में वही विचारधारा जमाने के साथ चल सकती है। जिसमें तर्क–प्रमाण, सत्य वैज्ञानिकता और व्यावहारिक सोच व दृष्टि है। इस कसौटी पर आर्य समाज का जीवन–दर्शन पूरी तरह से खरा उतरता है। आज संसार भौतिक विकास के साथ साथ विनाश की ओर तेज़ी से बढ़ रहा है। ऐसे भंयकर समय में ऋषि ने आर्य समाज के माध्यम से संसार को भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के समन्वय का अमर संदेश दिया है। इसी संदेश से दुनिया में विश्व शान्ति, विश्वबन्धुत्व, और विश्वमानवता की रक्षा हो सकती है। आर्य समाज का नियम कह रहा है– **'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है।'** इसकी विचार धारा में विशालता, व्यापकता, विराट्ता और **'वसुधैव कुटुम्बकम्' 'सर्वेभवन्तु: सुखिन:'** का अमर सन्देश व चिन्तन है।

आर्य समाज की प्रासंगिकता उपयोगिता एवं आवश्यकता पहले थी तभी इसका उदय हुआ। आज पहले की अपेक्षा अधिक प्रचार–प्रसार की ज़रूरत है। किसी विचारक का यह कथन सत्य है कि– **जहाँ–जहाँ आर्यसमाज है वहाँ–वह[ाँ] जीवन है।** जीवन एवं जगत् को सत्य अ[र्थों] में समझने, जानने और सुखद उपयो[गी] करने के लिए आर्य समाज की वि[चार] धारा का उपयोग महत्त्वपूर्ण एवं ला[भदायक] सिद्ध होगा। वैदिक जीवन दर्श[न] स्थिति परिस्थिति में मानने का सहारा, हिम्मत व प्रेरणा देता है नहीं चिन्तन करो। जब जाग सवेरा है। उठो, जागो अपने अपने स्वरूप को पहचानो काटो नहीं, जीओ। सुखद विचारों की ज़रूरत होती नहीं। आर्य समाज जीवन और मंगलमय बनाने व व्यावहारिक विचार देता

बी.जे.–29 पूर्वी

aryasamaj.org

उत्कृष्ट शंका समाधान

● स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक

शंका– एक की जमीन पर दूसरा ताकतवर होने के नाते कब्जा कर ले। तो क्या साधक वही तीन शब्द कहकर छोड़ दें कि 'कोई बात नहीं', अथवा 'फिर क्या करें'?

समाधान– यदि किसी ने हमारी जमीन पर अवैध कब्जा कर लिया है, तो उसे प्राप्त करने के लिये हर संभव कोशिश तो करनी ही चाहिये। प्रेम से, सभ्यता से, ठीक–ठाक शांतिपूर्वक बातचीत से अपनी ज़मीन को वापस ले सकते हो, तो ले लो। पूरा प्रयास करने पर भी अगर वो हाथ में नहीं आती है और उसके बिना भी हमारा काम चलता है और अगर हमें मोक्ष में जाना है, तो फिर झगड़ा नहीं करना चाहिये। फिर कोई जमीन खाये तो खाये, कोई चिंता नहीं। आपको अगले जन्म में दे देगा न्यायकारी ईश्वर। और मोक्ष में नहीं जाना है, तो फिर तो बहुत से रास्ते खुले हैं। लाठी उठाओ, गोली चलाओ, पिस्तौल उठाओ, कोर्ट में जाओ, जेल में जाओ, कुछ भी करो। लेकिन मोक्ष में जाना है तो झगड़े से बचना पड़ेगा।

शंका– कीट, पतंग, मच्छर को लार्वा–ट्रीटमेन्ट से विनिष्ट करते हैं। यह कर्म करना चाहिये या नहीं, और इस कर्म का फल क्या होगा?

समाधान– यदि मक्खी, मच्छर हमें परेशान करते हैं, तो हमें इनसे अपनी रक्षा करनी चाहिये। जैसे कोई पाकिस्तानी आतंकवादी हमारे देश में घुस आये, तो क्या उससे अपनी रक्षा नहीं करेंगे? करेंगे न। **अपनी रक्षा करने का हमको आविष्कार है,** तो खिड़कियाँ, दरवाज़े अच्छी तरह से बन्द रखें। वहाँ जाली लगायें ताकि मच्छर अंदर न घुसें। **कीट, पतंग, मच्छर तरह–तरह की बीमारियाँ अथवा रोग न फैला सकें।**

- जहाँ तक हो सके, बिना मारे काम चलता हो, तो इनको न मारें। मान लीजिये, एक मच्छर हमारे हाथ में आकर बैठ गया। तो पहली बार उसको सूचना दें, कि जाओ–जाओ, यहाँ मत काटो। ये हमारा हाथ तुम्हारे काटने के लिये नहीं है। कंधे पर आये, कान पर आये, कहीं भी आये, बैठे और काटने लगे तो एक बार, दो बार उनको वार्निंग देनी चाहिये, कि जाओ भाई! जाओ तुम्हारे खाने के लिये बाहर कूड़ा कचरा बहुत है, जाओ वो खाओ। हमारा शरीर तुम्हारे खाने के लिये नहीं। यदि फिर भी वह नहीं मानता, आकर बार–बार बैठता है, तो दण्ड व्यवस्था लागू होती है। अब उसको दण्ड दे सकते हैं। अब आके बैठता है तीसरी बार, चौंथी बार तो अब उसको हल्के से मारना। एकदम जोर से नहीं। दण्ड देते समय द्वेष नही आना चाहिये। अगर आपने ज़ोर से मारा, तो इसका मतलब मन में द्वेष आया। ध्यान रहे– द्वेष नहीं करना, गुस्सा नहीं करना। उसको प्रेम से दण्ड देना, जाओ भई! तुमको तीन बार समझाया, तुम नहीं जाते। इसलिए अब दण्ड मिलेगा। अब उसको ऐसे प्रेम से मारो। जाओ छुट्टी।
- और अगर कैमिकल छिड़कने पड़ते हैं, तो वह भी मज़बूरी की बात है। तो इसमें थोड़ा बहुत पाप भी लगेगा। दो, चार, पांच, दस पर्सेन्ट, तो कोई बात नहीं, भोग लेंगे।
- अगर जीना है, तो प्राणियों को कुछ तो कष्ट देना ही पड़ता है। हमारे शास्त्रों में लिखा है, कि **मनुष्य दूसरे प्राणियों को दु:ख दिए बिना जी नहीं सकता।** कुछ न कुछ तो हमारे कारण दूसरों को दु:ख होता ही है। **अपनी जान बचाने के लिए, अपनी रक्षा करने के लिए कुछ न कुछ तो दूसरों को कष्ट देना ही पड़ता है। जो मजबूरी है, सो ठीक है।** मजबूरी मानकर करेंगे, जानबूझकर नहीं, द्वेष भाव से नहीं, अपनी रक्षा की भावना से करना चाहिए।
- कीडों से बचाने के लिए किसान कुछ दवाइयाँ छिड़कते हैं। उससे बहुत से कीड़े मरते हैं, तो उसमें दोष तो लगता है। यह ठीक बात है। लेकिन उस फसल की रक्षा करने से मनुष्य आदि प्राणियों को खाने को भोजन मिलता है। इससे उनके जीवन की रक्षा भी होती है। कुछ हानि होती है, और बहुत सारा पुण्य मिलता है। इस प्रकार से इसको मिश्रित कर्म कहते हैं।
- **इसका प्रायश्चित यह है कि कुछ प्राणियों को खाने को भी दो।** जैसे कौवे आते हैं, कबूतर आते हैं, वे खेत में फसल खाते हैं, तो उनको खाने को भी दो। उनके कोई अलग से फैक्ट्री, कारखाने, व्यापार तो है नहीं। वो बेचारे प्राणी कहाँ खाएंगे। भगवान ने जो फसल पैदा की है, वह मनुष्य के लिए भी है और कौवों–कबूतरों के लिए भी है। उनको भी खाने दो। वे इतना नहीं खा लेंगे कि मनुष्य के लिए कुछ भी न बचे। थोड़ा वो भी खाएं, थोड़ा हम भी खाएं। पंच महायज्ञ है। उसमें जो बलिवैश्वदेव यज्ञ है, वह एक प्रकार से प्रायश्चित्त के रूप में है। आप इसका अनुष्ठान करें।
- फिर दो–पांच पर्सेन्ट जो दण्ड मिलेगा, भोग लेंगे। क्या दण्ड होगा, पूरा–पूरा तो हम नहीं कह सकते। थोड़ा बहुत, जो भी दण्ड होगा, भोग लेंगे।

शंका– एक व्यक्ति किसी डेढ़ साल की बच्ची के साथ बलात्कार कर जान से मार देता है। वो पकड़ा जाता है। जज उसकी सजा फांसी के रूप में देता है। यह हिंसा है या अहिंसा?

समाधान– इसका उत्तर यह है, कि यह अहिंसा है। **हमेशा याद रखें– जो न्याय है, वह अहिंसा है। और जो अन्याय है, वह हिंसा है।** अगर जज उसको मृत्युदण्ड देता है, तो बहुत अच्छा करता है। यह न्याय है, अहिंसा है। हमारा शास्त्र यह कहता है, कि उसको यह दण्ड सड़क पर, चौराहे पर देना चाहिए। आजकल की भाषा में बोलें, तो दिल्ली के जवाहर लाल नेहरु स्टेडियम में बहुत से लोगों को बुलाना चाहिए। पचहत्तर हज़ार लोग उसमें बैठ सकते हैं। सबके सामने उसको फांसी दो और उसका लाइव टेलीकास्ट करो। जैसे पूरे देश में क्रिकेट मैच का लाइव टेलीकास्ट करते हैं, वैसा उसका प्रसारण होना चाहिए। पूरे भारत के लोगों को दिखाओ, कि ऐसे अपराध करने वालों को क्या दण्ड दिया जाता है। ऐसे पाँच–दस लोगों को फांसी मिल जावे, तो पन्द्रह दिन के अन्दर ऐसे अपराध बंद हो जाएँगे। **फांसी मिलेगी पन्द्रह लोगों को, और लाखों लोग इससे सुधर जाएँगे।** महर्षि मनु जी का वेद का, यह संविधान है कि अपराधी को कठोर दण्ड देना चाहिए। एक–दो, पाँच–पन्द्रह को मिलेगा, लेकिन करोड़ों लोग सुधर जाएँगे। इसलिए वह न्याय है, अहिंसा है।

दर्शन योग महाविद्यालय
रोजड़ (गुजरात)

पालक का साग औषधि है

स्वीडन के वैज्ञानिकों ने पालक की पत्तियों में मौजूद थाइलाकायडस नामक तत्व
घटाने के कारगर पाया है।
किया है कि पालक भूख में
क की कमी ला सकती है।
क्स तथा फास्ट फूड
5 प्रतिशत तक घट
र्फ वजन नियंत्रित
बीमारियों का भी
ट्यूट आफ

सांइसेस के शोधकर्ताओं के अनुसार चीकू में मैथानालिक नामक केमिकल पाया जाता है जो ट्यूमर के अंदर इग्योप्लासिस की प्रक्रिया को बढ़ावा देने के कारगर होता है। इस प्रक्रिया में कैंसर कोशिकाएं अपने आप दम तोड़ने लगती हैं और ट्यूमर का आकार सिकुड़ता चला जाता है।

चूहों पर किए गए अध्ययन के अनुसार यह तत्व कैंसर कोशिकाओं के खिलाफ काफी तेज़ी से काम करता है।

मोहन लाल मगो
पी.65, पाण्डव नगर दिल्ली–91

वार्षिक चुनाव

आर्य समाज मन्दिर
आर्य समाज मार्ग, नई सड़क उज्जैन (म.प्र.)

प्रधान	श्री राजेन्द्र शर्मा
उप प्रधान	श्री ललित नागर एवं श्री सुरेश पाटीदार
मंत्री	श्री नरेन्द्र भावसार
कोषाध्यक्ष	श्री वेदप्रकाश आर्य
पुस्तकाध्यक्ष	श्री अम्बाराम वर्मा

Thearyasamaj.org

जन्म जन्म का पिता है परमेश्वर

● डा. बिजेन्द्र पाल सिंह

महाभारत के स्त्री पर्व में वर्णन है कि जब युद्ध समाप्त हो जाता है सेनाएं सेनानी योद्धा आदि जो जीवित बचे थे अपने अपने देश व घरों को जाने लगते हैं। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव पाण्डव व देश विदेश की सेनाओं के योद्धाओं के शव क्षत विक्षत अवस्था में पड़े थे। घायलों का उपचार किया जा रहा था। ऐसे में हस्तिनापुर में महिलाएं, वधुएं अपने प्रियजनों की याद में विलाप कर रही थी। जो प्रियजन मृत्यु को प्राप्त हो गए थे उनके लिए याद कर रुदन हो रहा था। ऐसे में महाराज युधिष्ठिर से देखा न गया और विचार कर उन्होंने अर्जुन व कृष्ण को इन महिलाओं को कुरुक्षेत्र के मैदान में ले जाकर परिजनों से मिलवाने व दर्शन कराने का आदेश दिया।

वेदानुसार इस सृष्टि का रचयिता व चलाने वाला तथा प्रलय कर्त्ता परमेश्वर है। ब्रह्मा विष्णु महेश आदि सौ नामों के विषय में ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समुल्लास में प्रकाश किया है। सृष्टि का कर्त्ता धर्त्ता सब कुछ वह एक ही सर्वशक्तिमान ईश्वर है। उसने सृष्टि को विशिष्ट नियमों के अनुसार चलाया हुआ है उसका विधान अति वैज्ञानिक है। सूर्य चन्द्रमा का उदय अस्त होना, ग्रह तारों की स्थिति गति, व पृथ्वी पर वनस्पतियों के अनगिनत विन्यास व प्रकार एवं रचना, उनका स्वरूप, मनुष्य व जीवों का स्वरूप, जीवन, रचना, आकार, उनका जीवन यापन सन् अलग अलग और एक प्रकार का भी है। यूँ तो मनुष्य का शरीर पृथ्वी पर सर्वत्र एक जैसा है– दो नेत्र, नासिका, मुख, शिर, दो हस्त, दो पैर आदि अंग सबके एक से हैं। शरीर के अन्दर की रचना–हृदय, यकृत, मस्तिष्क, रक्त संचार व्यवस्था, पाचन क्रिया; सब एक जैसी है– जितनी रक्त की धमनियां व शिराएँ–नाड़ियाँ भारत के मनुष्य में हैं उतनी ही और उसी प्रकार की रूस, जापान, अमेरिका, यूरोप के मनुष्यों की भी है। एक दम समान रचना है परन्तु भौगोलिक परिस्थिति के अनुसार लम्बाई चौड़ाई स्वर त्वचा का रंग आदि में कुछ अन्तर भी है। सबके चेहरे एक से नहीं; पहचानने हेतु, चेहरे से, व्यवहार, भाषा, स्वर आदि से भिन्न भिन्न भी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि उस ईश्वर की रचना विचित्र है। इस रचना के अन्वेषण में आज वैज्ञानिक प्रयासरत हैं और चन्द्रमा, मंगल, ब्रहस्पति, शनि तथा सौरमण्डल के अतिरिक्त अनेक सूर्य जिनके अपने परिवार हैं उनके अन्वेषण में लगा हुआ है; प्रयास कर रहा है, करता रहेगा, पौधे के पत्ते की रचना से लेकर सृष्टि में अनिगिनत सौरमण्डलों की खोज तक आज खगोल शास्त्री कर रहे हैं परन्तु उस ईश्वर की यह रचना इतनी बड़ी है मनुष्य पूर्ण रूप से जान नहीं सकता। वह ईश्वर पूर्ण ज्ञानी है वही सब जानता है।

मनुष्य भी जन्म लेता, जीवन को भोगता, अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है। आत्मा पुनः नया जन्म धारण करती है, नया शरीर मिलता, नया परिवार मिलता, नए माता पिता आदि, मिलते इस प्रकार मनुष्य को अनेकों जन्म मिलते है। विभिन्न योनियां कर्मानुसार फल भोगता रहता, नये जन्म व शरीर में आता जाता रहता है। इस जन्म में जो पिता मिलता, बन्धु बान्धव मिलते वे अगले जन्म में बदल कर अन्य मिलने पुनः फिर अगले जन्म में अन्य पिता बनते।

यहां यह कहना है कि प्रत्येक जन्म में नए व अन्य भिन्न माता–पिता मिलते हैं परन्तु उन सभी जन्मों में हमारा एक पिता है जो एक ही हैं इस जन्म में भी वही पिता है, पिछले जन्मों में भी वही पिता था, आगे के जन्मों में भी वही पिता होगा। वही तो है परमेश्वर। सर्व शक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, पालन कर्त्ता, दुख हर्ता, सर्व व्यापक, न्यायकारी सृष्टिकर्त्ता वह एक ईश्वर ही तो है। वही हमारा पिता है, उसको ही हमें ध्यान करना चाहिए।

महाभारत के स्त्री पर्व में वर्णन है कि जब युद्ध समाप्त हो जाता है सेनाएं सेनानी योद्धा आदि जो जीवित बचे थे अपने अपने देश व घरों को जाने लगते हैं। कुरुक्षेत्र के मैदान में कौरव पाण्डव व देश विदेश की सेनाओं के योद्धाओं के शव क्षत विक्षत अवस्था में पड़े थे। घायलों का उपचार किया जा रहा था। ऐसे में हस्तिनापुर में महिलाएं, वधुएं अपने प्रियजनों की याद में विलाप कर रही थी। जो प्रियजन मृत्यु को प्राप्त हो गए थे उनके लिए याद कर रुदन हो रहा था। ऐसे में महाराज युधिष्ठिर से देखा न गया और विचार कर उन्होंने अर्जुन व कृष्ण को इन महिलाओं को कुरुक्षेत्र के मैदान में ले जाकर परिजनों से मिलवाने व दर्शन कराने का आदेश दिया।

श्री कृष्ण व अर्जुन क्रन्दन करती चीत्कार करती विलाप करती महिलाओं को कुरुक्षेत्र के मैदान में ले गए। रथ व विमान आदि द्वारा जब यह महिलाएँ वहां पहुँची तो अपने परिजनों को देख और भी अधिक विलाप करने लगीं। इस पर अर्जुन व्याकुल हो गए। श्री कृष्ण योगी पुरुष तो थे ही ज्ञानी भी थे। वेद के मर्मज्ञ थे उन विलाप करती महिलाओं को मैदान से दूर ले गए उन्हें समझाया

माता–पित्र सहस्रानि पुत्रदार शतानि च।
संसारेस्वनि भूतानि कस्य ते कस्य वा वयम्।। –महाभारत–स्त्री पर्व

अर्थात्

आपने अनेक जन्म लिए उनमें किसी के माता पिता बने, किसी के बन्धु बान्धव बने, किसी के पुत्रादि बने, क्या पिछले जन्म के सम्बन्धियों को इस जन्म में भी पहचानते हो। कौन किसका सम्बन्धी किस जन्म में रहा कोई नहीं जानता यही ईश्वर का विधान है अर्थात् हम अगले पिछले जन्मों के सम्बन्धियों को नहीं जान सकते। अतः सम्बन्ध जन्म परिवार स्थान सब कुछ तो बदल जाता है पिता बदल जाते हैं माता बदल जाती है भाई बहन बदल जाते हैं। मृत्यु होते ही आत्मा नया शरीर धारण कर लेती है। उसका इस जीवन के सम्बन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। नया परिवार, नए बन्धु–बान्धव व सम्बन्धी मिलते हैं। यहां कृष्ण उन विलाप करती स्त्रियों को यही समझाते हैं कि जिनकी मृत्यु हो गई उन्हें नया जन्म मिल गया, तुम्हारे सम्बन्ध उनसे समाप्त हो गए। अब वह तुम्हें कहीं मिलेंगे भी तो पहचान भी नहीं पाओगे। अतः रोना व्यर्थ है ऐसा सुनकर महिलाओं का विलाप व क्रन्दन कम हुआ।

यहां कहने का औचित्य यही है कि वह परमपिता परमेश्वर हमारा पिता एक ही है। जन्म–जन्म का पिता है, जन्म–जन्मान्तरों का पिता एक ही है। वह हमें सब जन्मों में जानता है, देखता है, कर्त्तव्य कर्मों का फल भुगवाता है इसीलिए वेद माता कहती है

ओउम सनः पितेव सुनवेऽग्ने सपायनो
अव सचस्वा न स्वस्तये।

अर्थात् वह पिता परमेश्वर हमारी रक्षा करे जैसे एक पिता अपने पुत्रों की रक्षा करता है। हम सदैव उस पिता की उपासना श्रद्धा भक्ति से किया करें।

परमात्मा का स्मरण सदैव करना चाहिए। उस का ही ध्यान करना चाहिए क्योंकि वही तो हमारा पिता है। पुत्र की भांति हमारी रक्षा कर रहा है। जिस प्रकार से एक पिता अपने पुत्र हेतु सभी आवश्यकताएँ पूरी करता है पृथ्वी पर सूर्य–चन्द्रमा उनका प्रकाश, जल–वनस्पति फल–पुष्प, वायु सब मनुष्य व जीवों के लिए आवश्यक हैं वह सब वह ईश्वर ही तो करता है, कर रहा है, पुत्रवत हमारी रक्षा कर रहा है।

वेदादि शास्त्रों में ईश्वर की संध्या उपासना हेतु प्रकाश हैं उस परमात्मा ने हमारे लिए जीवन हेतु धर्मार्थ काम मोक्ष हेतु विशेष ज्ञान दिया है वही सब सत्य विद्याओं का ज्ञाता है, पूर्ण ज्ञानी है, सच्चिदानन्द स्वरूप है, उसका ही ध्यान करना चाहिए।

गली नं. 2, चन्द्र लोक कालोनी
खुर्जा (उ.प्र

कात्यायनमुनि विद्यापीठ का शुभारम्भ

महात्मा रसीलाराम वैदिक वानप्रस्थाश्रम (आनन्दधाम आश्रम), गढी, उधमपुर (जम्मु काश्मीर) के ट्रस्टियों की बैठक आश्रम के प्रधान श्री भारतभूषण आनन्दजी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें सर्वसम्मति से आश्रम में 'कात्यायनमुनि विद्यापीठ' की स्थापना करने का निर्णय लिया गया। विद्यापीठ में व्याकरण, छन्द, छः दर्शन, निरुक्त, आदि वैदिक वांग्मय का अध्यापन कार्य निःशुल्क कराया जाएगा। रोजड़ (गुजरात) में शिक्षा प्राप्त आचार्य सन्दीप आर्यजी ने अध्यापन कार्य निःशुल्क करना स्वीकार किया इसके लिए ट्रस्ट के सभी सदस्यों ने उनका अत्यधिक हार्दिक आभार व्यक्त किया। यह भी निर्णय हुआ कि आचार्यजी सहित विद्यापीठ में होने वाले भोजन, आवास एवं पुस्तकों आदि का व्यय आश्रम वहन करेगा तथा आचार्यजी को आश्रम एवं विद्यापीठ चलाने के सर्वाधिकार दिये गये है। आचार्य संदीप अ
कि आश्रम में शीघ्र ही
हो जायेगा और यह
संचालन हेतु दानवी
मांगी जा रही है
0946682
उपलब्ध है

Thearyasamaj.org

Sermons Delivered at Pune

● Prof. BhawanilalBhartiya

At a meeting held on 10th April 1875 (Saturday ChaitraShukla 5, 1932 v.) at Dr. Manekji's garden Girgaon Bombay, Swami DayanandSaraswati, a Veteran Vedic Scholar of Indian Renaissance, formally established the AryaSamaj reformist movement. After some time he was invited to come to Poona (today's Pune) by Justice MahadevGovindRanadey, the then district Judge of the town. His Proposal was seconded by Mahadev M. Kunte, another prominent citizen of Poona. Accordingly the Swami reached Poona and stayed at Hon. Shankar Seth's residence. Poona was considered the Kashi of the south as it was an important seat of Sanskrit and Shastric learning.

Here in the city he delivered a series of lectures at a place known as Bhide'sBada as well as in a Marathi school located in the East street of Poona Cantt. It is said that total fifty lectures were delivered out of which only fifteen were preserved by an editor of Marathi magazine, who had taken the notes and translated the gist in Marathi. Later these lectures were translated in Hindi and subsequently in other Indian languages. Original Marathi version has been preserved in the National Library, Kolkata and Bhandarkar Research Institute of Pune. First sermon was given on the 4th of July 1875 and on the last day (4th August 1875) the speaker narrated some of the important events which he had experienced in his life till then. In short it can be described as a piece of his autobiography.

Swamiji selected different subjects for his speeches which covered a vide range of topics like philosophy, religion, spirituality, ethics and a few secular subjects. He also took pains in describing a few important historical events which occurred in world history as well as in Indian history. Frankly speaking there is no synonym for the term 'Dharma' in any language.

Religion, sect, faith and other words used for Dharma do not give the correct meaning. During a short span of one month Swami Dayanand discussed importance of Dharma, provided information about the Vedas and related subjects, cycle of birth and rebirth as well sixteen sacraments which are to be observed in a man's life etc. Speeches dealing with history are six in number and they cover a wide range of events. It seems that Dayanand was not merely a vedic scholar and a reputed reformer but also a keen observer of History.

Another point is to be noted in this regard. Oratory and writing are two different methods of self-expression. While writing a book we are more alert and conscious. For our consultation and reference we have a huge library at our disposal. But when we deliver a sermon or speech, we have to rely on our memory. While introducing this PrawachanmalaUpdeshaManjari (the name given to the published lectures) to the readers, Swami Shraddhanand has aptly discussed the importance of these sermons. He has opined that many topics which have not been touched in the books like the Satyartha-Prakash and the RigvedadiBhashyaBhumika have found place in these lectures. As has been observed by Pt. SatyaPrakashBeegoo of Mauritius, the English translator of UpadeshManjari, while reading this collection of Swamiji's lectures, we must not forget that they are only the summary reports of the talks given by the learned Swami. Even then, they provide plenty of information about Vedic Dharma and Aryan philosophy. The myth that the Aryas came from abroad and settled in the plains of north India, conquered the aboringines and usurped their land has been proved wrong. It is heartening to note that UpadeshaManjari has been published in English and is available for English-knowing public.

दो शब्द–धर्मनिरपेक्षता और धर्मान्तरण

● श्रुति भास्कर

राष्ट्र को बिखराव एवं अलगाववाद की ओर ले जाने में इन दो शब्दों की सबसे ज्यादा भूमिका है। कुछ राजनेता देश की जनता को बेवकूफ बनाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए अक्सर इन शब्दों को प्रयोग करते रहते हैं। जबकि धर्मनिरपेक्ष शब्द ही गलत है। **धर्म सापेक्ष राष्ट्र** सही शब्द है। इसी प्रकार धर्मान्तरण शब्द गलत है। इसके स्थान पर **सच्चे धार्मिक बनाने** का प्रयोग करना चाहिए।

सारी दुनिया में भारत को धर्म प्रधान राष्ट्र के रूप में जाना जाता है। सम्पूर्ण विश्व को शान्ति और भाईचारा का संदेश देने वाले विश्व गुरु कहलाने वाले इस देश में जब धर्म के नाम पर लोग लड़ते हैं तो दूसरे देश के लोग क्या सोचते होंगे, कहीं हम अपने गौरव को अपने ही हाथों नष्ट तो नहीं कर रहे हैं?

स धर्मप्रधान भूखण्ड के सरोवर में क्षता का ऐसा कंकर फेंका गया को भूखा लहरों ने भयंकर लहरों का उन्होंने दाव लिया और हम आपस में 43 प्रतिशत त कभी हिन्दू–मुसलमान इसके खाने से स्नसुन्नी में, कभी के सेवन की इच्छा 9ी वैष्णव–जैन में, सकती है। इससे न स्किारियों में। इसी रहता है, बल्कि दिल की धर्म परिवर्तन खतरा कम हो जाता है। वं वैमनस्य बैंगलूरू स्थित इन्डियन इन्स्टी

हमने एकता में अनेकता में एकता को बार–बार दोहराया फिर भी हमें एकता में रहना नहीं आया। एकता में रहने के दो तरीके हैं। एक है–संतरे वाला तरीका। संतरा बाहर से एक दिखता है लेकिन अन्दर से छील देने पर फाँक–फाँक बिखरकर अलग होने लगता है। दूसरा है खरबूजे वाला तरीका–खरबूजा बाहर से अलग–अलग फाक दिखाई देता है किन्तु अन्दर काटने के बाद एक ही होता है। भारतीय संस्कृति (वैदिक ऋचा) खरबूजे की तरह एकता में रहने का उपदेश करती है। **त्रयम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्......**

धर्मान्तरण का अर्थ होता है एक धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म को ग्रहण करना जबकि वास्तविकता यह है कि धर्म एक होता है, उसे परिवर्तित नहीं किया जा सकता, पंथ अनेक हो सकते हैं। दूसरा शब्द है धर्मनिरपेक्ष जिसका अर्थ होता है धर्म से अलग रहना या धर्म से विमुख रहना। जबकि सच्चाई यह है कि धर्म के बिना कोई भी प्राणी या वस्तु अलग रह नहीं सकती और अलग रहने का प्रयास करती है तो वह अपने मूल रूप को खो देगी। उदाहरण के लिए अग्नि का धर्म है जलाना। अगर वो जला नहीं सकती तो वह अग्नि नहीं रही। इसी प्रकार मानव का धर्म है मानवता। यानी किसी के काम आना और अगर ऐसा नहीं है तो वह व्यक्ति मानव नहीं है।

धर्म के प्रति वैचारिक विभिन्नता ही सारे अलगाववाद की जड़ है और इस जड़ को नष्ट किए बिना एकता, भाईचारे की बात करना राष्ट्र के साथ छलावा है।

धर्म के प्रति वैचारिक एकता को जन–जन में पहुँचाना वर्तमान समय की सबसे बड़ी प्राथमिकता होनी चाहिए। आप कहेंगे कि यह कैसे सम्भव है? यह सम्भव है और इसका समाधान है वेद प्रदत्त विचारधारा से ***श्रण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्रः....*** मानवमात्र को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि ऐ अमृत पुत्रों तुम सुनो। हिन्दूओ सुनो, मुसलमानो सुनो, सिक्खो सुनो, ऐसा सम्बोधन नहीं है। *** एको वसी सर्वभूतन्तरात्मा....** सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में एक संसार का मालिक वास करता है।

*** मनुर्भव–** वेद कहता है कि आप श्रेष्ठ मानव बनें, सज्जन बनें। सज्जनता मजहब सम्प्रदाय के दायरे में नहीं आती। हिन्दू बनने, मुसलमान बनने या सिक्ख बनने की बात नहीं कही गई है। *** मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि–** अर्थात् सभी प्राणियों को हम मित्र की दृष्टि से देखें। *** एकं सत विप्रा बहुधा वदन्ति....** संसार का मालिक एक है, गुण वातावरण, स्थान विशेष के अनुसार ज्ञानी पुरुष अनेक नामों से पुकारते हैं। अज्ञानी उसे अलग–अलग समझकर आपस में लड़ते हैं।

विचारों की एकता ही सारी एकता की जड़ है। सृष्टिकर्त्ता ने भी मानव मात्र को यही संदेश दिया है। *** समानो मंत्र समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्....**
अर्थात् **हों विचार समान सबके। चित्त मन सब एक हों।**
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।

जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में धर्म में विकार आते ही अर्थ और काम में स्वतः ही विकार आने लगता है जिससे जीवन और समाज में अशान्ति पैदा होती है। अतः हमें धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना होगा। हमने धर्म को पूजा, नमाज और भक्ति तक ही सीमित कर दिया जबकि धर्म का अर्थ होता है–कर्त्तव्य, हमारा कर्त्तव्य क्या है इस संसार के रचियता के प्रति, हमारा कर्त्तव्य क्या है राष्ट्र के प्रति, हमारा कर्त्तव्य क्या है माता–पिता–आचार्य के

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

earyasamaj.org

आदित्य मुनि वानप्रस्थ वेदों को पौरुषेय मानते हैं

• श्री हरिश्चन्द्र वर्मा 'वैदिक'

आदित्य मुनि वानप्रस्थ ने सन् 2014 में एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसका नाम है 'वेदों का अपौरुषेयत्व' उसमें उन्होंने वेदों को पौरुषेय सिद्ध किया है। उन्होंने पृ. 20 में लिखा है कि वेद में ईश्वर, जीव और प्रकृति का एक साथ कहीं साक्षात नाम नहीं है। परन्तु यदि ऋषि दयानन्द वेदों से ईश्वर, जीव और प्रकृति का आविष्कार किये हैं तो उन्होंने क्या गलत किया है?

यदि ईश्वर ने सृष्टि के आदि में सर्वश्रेष्ठ मानव को ज्ञानेन्द्रियाँ न दिया होता और ऋषियों को नैमित्तिक ज्ञान के लिये वेद विद्या न दिया होता तो कोई भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को न जान पाता और न ज्ञानोन्नति कर पाता। जैसे बालक अपने आप ज्ञानी और उसका विकास नहीं कर सकता वैसे ही बिना ऋषियों के उपदेशों और शिक्षा के मानव अपने आप ज्ञानोन्नति न ही किया न कर सकता है। यदि अपने आप किया होता तो अण्डमान और अफ्रीका के जंगली आदि के लोग कब का सभ्य और ज्ञानी हो जाते किन्तु गत 100 वर्षों से 'कोल्ह, भील, संथाल आदि के यहाँ क्रमशः ज्ञानी मनुष्यों के पहुंचने से अब उन सबमें परिवर्तन होने लगा है।

सन् 1820 में ईश्वर चन्द्र विद्यासागर वैदिक शास्त्रों का अध्ययन करने के बाद बाल विवाह निषेध और विधवा विवाह के पक्ष में आइन पास कराये थे। उसके पश्चात राजा राममोहन राय ने विधवाओं की सती कुप्रथा को जिन चित्त पावन ब्राह्मणों ने प्रचलित किया था उसे वह वैदिक शास्त्रों का प्रमाण के साथ आन्दोलन करने लगे जिसके प्रभाव से लॉर्ड विलियम बैन्टिक ने सन् 1829 में सती दाह निवारण आइन पास करा दिया।

सत्य और सत्यार्थ के समर्थक ऋषि दयानन्द के पहले और उनके समय में किसी का साहस नहीं हुआ था कि महिधर, सायण और मैक्समूलर आदि के वेदों के अनर्थ भाष्य पर टिप्पणी कर सके जबकि उन्हीं भाष्यकारों तथा पुराणों के चलते भारत में अनेक प्रकार की कुप्रथा, कुसंस्कार और आडम्बर फैल गया था और योग–यज्ञ छोड़कर प्रतिमा पूजन को ही धर्म तथा उसी को भगवान और परमात्मा मानते थे, किन्तु जब ऋषि दयानन्द ने 'सत्यार्थ प्रकाश' की रचना कर दी और वेद भाष्य तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका को लिख दिया तब सभी को ज्ञात होने लगा कि सत्य क्या है और असत्य क्या है। बहुत से कुसंस्कार में फंसे हुए लोग ऋषि के अनुयायी हो गये। उसके पश्चात वैदिक धर्म के प्रचार के लिए सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना कर दी।

तात्पर्य यह कि जैसे वेद एवं वैदिक ऋषियों के न होने से किसी को नैमित्तिक ज्ञान न होता उसी प्रकार 19वीं सदी में यदि ऋषि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि की रचना न की होती तो किसी को धर्माधर्म का ज्ञान एवं वेद की महत्ता के बारे में जानकारी न होती। ऋषि ने चारों वेदों को भलीभांति देखकर ही कहा था कि 'वेद–सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है'।

वेदोत्पत्ति काल में वेद वैदिक भाषा में था। उसके पश्चात जिस–जिस मंत्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहले उस मंत्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसलिए अद्यावधि उस–उस मंत्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा जाता है। जो कोई ऋषियों को मंत्रकर्त्ता बतलावे उनको मिथ्यावादी समझें; वे तो मंत्रों के अर्थ प्रकाशक हैं। (सत्यार्थ प्रकाश)

इस प्रकार धर्मात्मा, योगी, महर्षि लोग जब जब जिस–जिस के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हुए तब–तब वे ईश्वर की कृपा से इष्ट मंत्रों के अर्थों को जानने लगे। जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ–प्रकाश हुआ तब ऋषि मुनियों ने इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये, उसका नाम 'ब्राह्मण' अर्थात् ब्रह्म जो वेद (है) उसका व्याख्यान–ग्रन्थ होने से ब्राह्मण नाम हुआ। प्रश्न–ऋषियों ने वेद–मंत्रों का प्रकाश क्यों किया? उत्तर–वेद–प्रचार की परम्परा स्थिर रखने के लिये तथा जो लोग वेद–शास्त्रादि पढ़ने को कम समर्थ थे वे जिससे सुगमता से वेदार्थ जान लेवें, इसलिये निघण्टु और निरुक्त आदि ग्रन्थ भी बना दिये हैं कि जिनके सहाय से सब मनुष्य वेद और वेदांगों को ज्ञानपूर्वक पढ़कर उनके सत्य अर्थों का प्रकाश करें। (ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका)।

वेदोत्पत्तिकाल से श्रुत ऋषियों के परम्पराओं ने जो चारों वेदों के 20349 ऋचाओं को सुरक्षित रक्खा यह बहुत बड़ी बात है, इन मंत्र संहिताओं का नाम ही वेद है।

वेदव्यास जी से पूर्व उपनिषद और ब्राह्मण ग्रन्थ अस्तित्व में आ चुके थे। यह हो सकता है कि वेदव्यास जी ने अपने समय में भिन्न–भिन्न बहुत सी शाखा बन जाने के कारण ब्राह्मण और श्रौत–सूत्र आदि का निश्चय कर दिया हो कि किस–किस शाखा का कौन–सा ब्राह्मण है। यह भी संभव है कि वेद व्याज जी ने शाखाओं का प्रवचन और व्याख्यान किया हो और इस प्रकार वे वेदों का प्रचार–प्रसार करने में बहुत सहायक रहे हों।

इस विषय में ऋषि दयानन्द लिखते हैं कि–'यह बात (कि वेदव्यास जी ने वेद रचे हैं) मिथ्या है क्योंकि व्यास जी ने भी वेद पढ़े थे और उनके पितामह पराशर, उनके पितामह शक्ति और प्रपितामह वसिष्ठ और वृहस्पति आदि ने भी वेद पढ़े थे। जो व्यास जी ने बनाये होते तो वे कैसे पढ़ते, क्योंकि व्यास जी तो बहुत पीछे भये हैं और जो उनका वेद व्यास नाम पड़ा है वह इस रीति से पड़ा है कि उन्होंने वेदों को पढ़के और पढ़ाये हैं जिससे सब वेदों का पठन–पाठन फैलाया और वेदों में उनकी बुद्धि विशाल थी कि यथावत् शब्द, अर्थ और सम्बन्ध से वेदों को जानते थे, सो इनका नाम वेद व्यास रक्खा गया। (स. प्र. प्रथम संस्करण)

आपने लिखा है कि 'अमैथुनी सृष्टि में किसी का कोई माता–पिता नहीं होता। मैथुनी सृष्टि में ही माता–पिता, भाई–बहन का नाता चलता है। अब मेरा आप से प्रश्न है कि उस समय तो उस आदि मानव में केवल स्वभाविक ज्ञान ही था, फिर अंगों को ढकने के लिये पेड़ की छाल और केले आदि के पत्तों का व्यवहार करना और माता को माता, पिता को पिता, भाई को भाई और बहन को बहन समझना बिना भाषा और धर्मतत्व को जाने आदिम मनुष्यों को इस प्रकार का नैमित्तिक ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ था?

हमारे विचार से वेदों के मंत्र ईश्वरीय होने से अपौरुषेय हैं, और पौरुषेय अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों के माध्यम से वह वेद प्रकाशित हुए थे। वे मंत्रों के रचयिता नहीं थे वे केवल प्रकाशक थे।

वेद निन्दक यदि आदित्य मुनि वानप्रस्थ, राजा राममोहन राय के समय में होते तो सती कुप्रथा को बन्द करवाने में वे सफल नहीं हो पाते, क्योंकि जिस वैदिक धर्मशास्त्र के आधार पर उन्होंने उस कुप्रथा को रोक दिया था नहीं रोक पाते। आज भी यदि आर्य विद्वान उनकी वेद–विषय के बारे में कथनी को मानने लगे तो कोई भी प्रार्थना, सन्ध्योपासना, योग–यज्ञ नहीं करेगा। किन्तु सबकी समझ तो आदित्य मुनि जैसी है नहीं।

जैसे एक समय मैक्समूलर ने वेदों को गड़ेरियों का गाना बताया था, वैसे ही आदित्य मुनि जी भी ऋग्वेद को ऋषियों ने काव्यमयी भाषा में गुणगान किया है लिखा है, उनके शब्दों में वेद एक काव्य ग्रन्थ है।

किन्तु वेद के सम्बन्ध में आज वही पाश्चात्य विद्वान जिन्होंने वेदों को भेड़–बकरी चराने वाले का गाना कहा था, वही आज उसे विद्या की पुस्तक मानने लगे हैं।

ईश्वर विज्ञान स्वरूप है इसलिये उसकी पंचतत्व आदि की सृष्टि विज्ञान संगत है। शरीर की अग्नि, वायु मण्डल में व्याप्त अग्नि और सूर्य की अग्नि को किसी वैज्ञानिक ने उत्पन्न नहीं किया। इन वैज्ञानिकों के लिये उनके उत्पन्न के पहले ही सृष्टिकर्त्ता ने विभिन्न प्रकार के मौलिक उपादानों को उत्पन्न कर दिया था। इसी प्रकार औषधि के लिये वनस्पति और भोजन के लिये अन्नादि के बीजों को पहले ही उत्पन्न कर दिया ताकि मनुष्य उससे भोजन बना सके, यहाँ तक कि कपास तक को उत्पन्न कर दिया और वेदादि शास्त्रों द्वारा नैमित्तिक ज्ञान भी दे दिया ताकि ज्ञानोन्नति करके वस्त्रादि का निर्माण कर सके। यदि उपरोक्त उपादानों को परमात्मा की शक्तियों ने उत्पन्न न किया होता तो कोई भी वैज्ञानिक प्राकृतिक बिजली को देखकर कृत्रिम बिजली को उत्पन्न न कर पाता, सूर्य से उत्पन्न वैद्युत तरंगों के माध्यम से 'सटर लाइट' को स्थापित न कर पाता। यदि वायु में परमाणु कणों के तरंग न होते तो रेडिओ, दूरदर्शन और मोबाइल आदि का निर्माण कैसे होता?

'श्रुति हवन' हमारी प्रार्थनाओं को सुनने और दूसरों तक पहुंचाने में भी वायु समर्थ है। इस मंत्र का अर्थ करते हुए ऋषि दयानन्द ने लिखा है–'**जीवो वायुनिमित्ते नैव शब्दानामुच्चारणं श्रवणं च कर्त्तं शक्नोति।**' अर्थात् जीवात्मा वायु के द्वारा ही शब्दों का उच्चारण श्रवण करने में समर्थ होता है। ऋषि के इस अलौकिक अर्थ को पढ़कर लोग इसको एक कल्पना समझते थे, लेकिन आज विज्ञान के आविष्कारों ने इसकी सत्यता को सिद्ध करके दिखला दिया है और हमको अनुभव हुआ है कि ऋषि दयानन्द की दिव्यदृष्टि कितनी दूर तक पहुँच सकती थी। हम जब परस्पर बातचीत करते हैं, वह वायु द्वारा ही दूसरों के कानों तक पहुंचती है।

जिस प्रकार तालाब में एक ढेला फेंकने से गोल–गोल लहरें चारों ओर फैलती हैं, उसी प्रकार जो बात हम करते हैं वह वायु मण्डल में फैल जाती है और उसको बेतार का तार यन्त्र ग्रहण करता है। इस तरह हम यहाँ बैठे उस मशीन को अपने पास में रखकर लंदन में होते हुए

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

ryasamaj.org

How I occupied Myself in Exile

● LalaLajpatRai

The daily routine, I observed at Mandalay was as follows—

I generally got up between 5 and 6 a.m. and after attending to the calls of nature and washing myself I said my prayers. Finishing this, I took a cup of hot milk and went out for a walk. On return I occupied myself in religious reading which was out of the following books.

1. Bhagwad Gita, with the aid of an English translation and a Hindi commentary.
2. Message of the Vedas, a collection of Vedic hymns, with an English translation by LalaGokal Chand, M.A.
3. YogDarshan, with the aid of Hindi commentary.
4. Master DurgaPrashad's Selections of Vedic Hymns and Sacred Songs, etc.
5. The Taitreya Upanishad, with a Hindi commentary.

After this I engaged myself in miscellaneous reading. Between 11 and 12, I had a bath and then took my breakfast. After this, I retired for an hour or two reading magazines, if I had any. I again studied up to 5 to 6 p.m. and sometimes wrote letters. Sometimes I took notes on Burma and did other writing work by way of change. At about 5 p.m. I went for my evening walk, from which I had to return before it was dark. On return, I generally took a cool drink and kept sitting in the compound for an hour, till I went up and took a bath before dinner. Dinner finished, sometimes I tried to read but often had to give it up in despair, as the number of worms and moths that gathered round the candle made it extremely unpleasant to sit before it. At about 9 p.m. generally, I went to bed. I was very irregular in my evening prayers, though I never let any evening pass without an informal recitation of Vedic hymns or bhajans.

Besides religious reading, the range of my studies at Mandalay was fairly wide. I finished every book that I could lay my hands on, however trivial its contents, or however ephemeral its interest. For me the greatest need was to keep myself occupied. I read a very large number of novels, which were of no real value, with the sole object of killing my time. All the same the following list of books read by me at Mandalay will show that I occupied my time very profitably in studying some standard works of literature.

(a) Of books dealing with Burma, the Burmans and Burmese History, I read :

1. Burma under British Rule and Before, by J. Nisbet, 2 volumes.
2. Picturesque Burma, Past and Present, by Mrs. Earnest Hart.
3. The Burman, His Life and Notions, by SchwayYoe.
4. Silken East, by O'connor in two volumes.
5. Among Pagodas and Fair Ladies, by Gaseoigne.
6. Sir J.G. Scott's Burma: Handbook of Practical Information.
7. Fielding Hall's A People at School.
8. Fielding Hall's The Soul of A People.
9. Census Report of British Burma.
10. The Administration Report of Burma for 1904-05. Besides these a number of small stories describing Burmese life, customs and manners.

(b) General books :

1. Justin M'Carthy's Reminiscences, two volumes.
2. Justin M'Carthy's History of Our Own Times, five volumes.
3. History of Modern England, by Herbert Paul, five volumes.
4. Duffy's New Ireland.
5. Herbert Spencer's Autobiography, two volumes.
6. Lecky's History of the Rise and Influence of Rationalism in Europe, two volumes.
7. Hallam's History of Middle Ages, three volumes.
8. Motley's Rise of the Dutch Republic, two volumes.
9. Bryce's The American Commonwealth, two volumes.
10. Ledger and Sword, A History of the East India Company, two volumes.
11. History of the Indian Mutiny, by Kaye and Malleson, volumes 2 and 3.
12. Lord Robert's Forty-one Years in India.
13. Fielding Hall's Hearts of Man.
14. Voltaire's Candide.
15. Evolution of Industry (Contemporary Science Series).
16. HarbilasSarda's Hindu Superiority.
17. Dickinson's Modern Symposium.
18. Patterson's Nemesis of Nations.
19. Poems of Byron.
20. Poems of Thomas Moore.

(c) Novels (a few names only).

Charles Dicken'sNickleby, David Copperfield, Oliver Twist; BamabyRudge; Low Lytton's Rienzi; Thackeray's Vanity Fair; George Elliot's Mill on the Floss; Marie Corelli's Temporal Power.

Besides, I read a large number of miscellaneous novels by Anthony Hope, Grant, Mrs. Crawford, Tolstoy, Churchill and others.

(d) Of Urdu and Persian books I had the Dewan-i-Hafiz, the Dewan-i-Zauq, Azad's Ab-i-Hayat, Azad'sNairang-Khial.

(e) I used to get the following periodicals from home but only stray numbers were allowed.

The Review of Reviews (only one number allowed).

The Nineteenth Century and After.

The Westminister Magazine.

The Fortnightly Review.

The Contemporary Review.

Hindustan Review (2 or 3 numbers allowed).

The Modern Review (only two numbers allowed).

The Vedic and Gurukul Magazine.

The Zamana, an Urdu Monthly.

The Makhzan, and Urdu Bi-monthly.

TheDevNagriPracharniPatrika, a Hindi Monthly.

During my confinement I did a certain amount of literary work. I wrote:

(a) A small book on Burma in Urdu based on notes taken from the books I read as well as on conversations with the Burmese Sub-Inspectors.
(b) An Urdu novel which I could not finish. I, however, wrote about 150 pages of foolscape size.
(c) A small paper in Urdu on current topics.
(d) A paper on the 'Message of the Bhagwad Gita' in English.
(e) An article on Social Reform in English.

Of these (d) has already been published in the Modern Review of March 1908 and has since then been reprinted as a tract.

I wish I had noted down the stray thoughts that arose in my mind in the course of my studies of Mandalay. Some of them were jotted down in the Diary but they are too brief to be copied here with any chance of being intelligible to the general reader.

My chief trouble in my exile was loneliness. I had never before felt to solitary. My revered friend Lala Hans Raj, Honorary Principal of the D.A.V. College, put his hand on the right chord when he said that having been sociable all my life, the present enforced solitariness must be very trying to me. Some of the European Sergeants on duty were kind to me and I sought their company now and then, but after all, what pleasure could their company give me? Firstly, the disparity between my education and position in life and theirs was too large to admit of their entering into my sentiments and feelings. Then our tastes differed very much. However, there is one thing in me, which stands me in good stead whenever I am put in new and strange environments, viz., my readiness to adapt myself to new circumstances. But even this adaptability could not reconcile me to an unqualified enjoyment of the company into which I was put. I was, therefore, much relieved to find two kittens in my bungalow. They were very pretty. One looked like a ginger coloured tigress and the other had black spots. I began to feed them, and they became attached to me. Their company was thus a happy change. Sometimes I spent a good portion of an hour in watching them playing with each other, licking each other and lying in each other's arms like twin sisters. Their attachment to each other was remarkable. For me, at least, it was a new experience.

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

Thearyasamaj.org

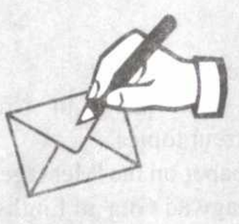

पत्र/कविता

एक नव जागृति नव चेतना का आरंभ हुआ है

विश्व में प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस 21 जून, 2015 को मनाया गया। जिसका उददेश्य मानव मात्र को स्वास्थ्य की रक्षा करना है। शारीरिक आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति हेतु योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विश्व भर में राजनीतिक, विद्वान, अधिकारी गण, विद्यार्थी तथा जन समुदाय इस हेतु बढ़ चढ़ कर हर्ष पूर्वक आगे आये हैं तथा यह विश्व के भविष्य के लिए अत्यन्त शुभ संकेत है।

हम प्रकृति से दूर जा रहे हैं, आसुरी प्रवृत्तियां वृद्धि पर है। अप्राकृतिक व कृत्रिम साधनों का जीवन में प्रयोग अधिकाधिक है रहा है। प्रदूषण आदि से उच्च रक्त चाप, कैंसर, श्वास, एलर्जी, नेत्र व त्वचा रोग वृद्धि पर हैं। इनसे बचने का उपाय विश्व योग में देख रहा है, अनुभव कर रहा है। यही नहीं विश्व के लोग योग को अपने जीवन में आचरण में भी ला रहे हैं। अनुभव कर रहे हैं कि योग जीवन के लिए उत्तम कार्य है।

योग का स्वरूप ही शारीरिक व मानसिक रूप से श्रेष्ठता लाना है। बुराईयां अर्थात् शारीरिक मानसिक बुराईयां नित्य प्रति योगाभ्यास व अष्टांग योग से निवृत्त हो सकती हैं आज योग को लेकर विश्व में एक नव जागृति नव चेतना का आरंभ हो रहा है जो विश्व के लिए आशा लेकर आया है।

डॉ बिजेन्द्रपाल सिंह गली न. 2
चन्द्रलोक कालोनी खुर्जा 203131
मो. 9829794718

****

शुद्धताई

शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं
भ्राजता भ्राजोंऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्।।

(–अथर्व. 17.1.20)

शुद्धताई शुभ शुद्धताई।
प्रभु प्रभा दर्शी शुद्धताई।।
तल स्वच्छ रहे तन स्वच्छ रहे।
मन मेघा जिसकी स्वच्छ रहे।
हर कहीं प्रभा आभा होगी,
पेरिवेश वेश सब स्वच्छ रहे।
सौन्दर्य शाश्वत शुद्धताई।
प्रभु प्रभा दर्शी शुद्धताई।। 1 ।।
स्वयमेव शुद्ध सर्वेश्वर हैं।
स्वयमेव प्रभा परमेश्वर हैं।
शुभ शुद्ध हृदय में झलकाते,
अनुभूति स्वयं हृदयेश्वर हैं।
ओजदायी है शुद्धताई।
प्रभु प्रभा दर्शी शुद्धताई।। 2 ।।
हों स्वच्छ शुद्ध आयाम जहाँ।
निष्कलुष कला के काम जहाँ।
हर ध्यानी का ध्यान नहीं रखता,
हों सुखद श्रेय परिणाम वहाँ।
श्रुति ने सिखाई शुद्धताई।
प्रभु प्रभा दर्शी शुद्धताई।। 3 ।।

देवातिथि, देवनारायण भारद्वाज
वरेण्यम, अवन्तिका (प्र.)
शमघाट मार्ग, अलीगढ़

धर्म के ठेकेदार हमें कब तक लजवाते रहेंगे?

'पीके' से कहीं अच्छा था 'ओ माई गॉड'; जबकि यह फिल्म सिर्फ हिन्दू समाज के ही पाखंडों और पाखंडियों पर ही अंगुलि उठाते दिखायी दी। अन्य धर्मों पर क्यों नहीं? बेशक इससे हम हिन्दुओं की हंसी और अधिक होने लगी है। किन्तु इसका जिम्मेवार पीके नहीं है। यह तो मात्र आइना है, आइने से शिकायत क्या, दर्पण झूठ न बोले। यदि हम अपनी छवि नहीं सुधारेंगे, तो हर मोड़ पर लगे ऐसे आइने हमें शर्माते या कुछ करते ही रहेंगे। भले ही आइने (लगाने वाले) खुद ही धुंधले क्यूँ न हों।

पाखंडों के सहारे ही हिंदुओं को मूर्ख बना के हमारे पाखंडी धर्माचार्यों की विभिन्न छोटी–बड़ी दुकाने चल रहीं हैं। इनके ग्राहक भी ऐसे परमानेंट मूर्ख बन जाते हैं कि कोई सच्चा शोधार्थी यदि हिम्मत कर के बता भी दे कि अमुक आशाराम, रामपाल की दुकान में नकली या धर्मघातक वस्तुएं बिकती हैं, तो उसके ग्राहक लोग आस्था पर चोट पहुँचानें वाला कहकर उल्टे टूट पड़ते हैं।

मेरे अवैध हथियाये जमीन को सरकार न ले ले, मेरी दीवार पर कोई न मूते, कोई न थूके, इसके लिये हम सबसे सस्ता वहाँ भगवान को लगा देते हैं। कंकड़ मिले चावल के बोरे में लक्ष्मी जी का चित्र छाप कर आसानी से बेच देते हैं, उसी चित्र पर लोग लात भी रखते हैं। अभी विद्या की देवी– सरस्वती पूजा आई। इनकी आराधना सिर्फ विद्यालयों में होनी चाहिये। किन्तु विद्या–विरक्त लड़कों की मनमानी चंदा ले–लेकर गली–मुहल्लों में नाली–कूड़ेदानों पर पंडाल बना के फूहड़ गानों का हल्ला–हुडदंग मचाते हैं।

इस तरह कई–कई पीके बनाने वालों के लिए अभी भी हमारे पास पयार्प्त मसाले हैं। स्वार्थ में डूबे हमारे किसी हिन्दु–नेता को चिन्ता नहीं है। सच्चे हिंदुओं को अब खुद ही धार्मिक–क्रांति लानी होगी। मैं अकेले पुजारी होकर भी इन पाखंडों के विरूद्ध कितना चिल्लाऊँ।

आर्य गिरि,
निंगा, आसनसोल

****

हर पल बदलेगा

आज नहीं तो–
कल बदलेगा।
पल–पल घटता–
पल–पल बढ़ता।
समय रुका कब–
हर पल चलता।

कभी धूप,
कभी छाँव में ढलता।
आज दुःख, कल–
सुख में बदलेगा।

आज, आज ही–
कल बदलेगा।
तू क्यों चिन्ता–
करता पगले।

समय रुका कब–
हर पल चलता।
सांझ ढलेगी–
सूरज निकलेगा।

पल–पल बदलेगा।
हर पल बदलेगा।
सांझ ढलेगी, दिन
निकलेगा।

के. के. शर्मा,
RZ-2000.C/25ए (F.F.)
तुगलकाबाद विस्तार,
नई दिल्ली–110019
मो. : 9811459751, 9811637366

Thearyasamaj.org

☞ पृष्ठ 07 का शेष

दो शब्द – धर्मनिरपेक्षता...

प्रति, हमारा कर्त्तव्य क्या है दूसरे प्राणियों के प्रति? जीवन के हर क्षण, हर स्थान और प्रत्येक क्रिया कलाप में धर्म की आवश्यकता होती है। धर्म को व्यापक दृष्टिकोण से देखने से व्यक्ति मजहब सम्प्रदाय के दायरे से बाहर निकलता है। इसी दृष्टिकोण के अभाव के कारण आज धर्म के नाम पर आतंकवाद, दंगे–फसाद आदि होते रहते हैं। वर्तमान समय में विद्वानों का अभाव एवं अविद्वानों का बाहुल्य भी धर्म के प्रति भ्रान्ति फैलाने में एक बड़ा कारण है। चूँकि विद्वानों का विचार व्यापक दृष्टिकोण, मानवीय मूल्यों, सुतर्क एवं सृष्टि नियमों पर आधारित होता है अतः वह मानवहित में होता है। जब तक खुदा की इबादत करने वाला यह नहीं समझेगा कि सिक्ख का वाहेगुरु भी हमारा खुदा ही तो है, हिन्दू का ईश्वर भी हमारा खुदा ही तो है तब तक आपसी भाईचारा एवं शान्ति प्रेम की स्थापना राष्ट्र में नहीं हो सकती।

इसी प्रकार हिन्दू भी जब तक यह नहीं समझेगा कि मुसलमान जिस खुदा की उपासना करता है वह हमारा ईश्वर ही तो है।

धर्म के प्रति वैचारिक एकता को प्रसारित करके ही हम राष्ट्र एवं समाज में एकता और भाईचारा को मजबूती प्रदान कर एक शक्तिशाली एवं विकसित राष्ट्र की स्थापना कर सकेंगे।

धार्मिक प्रवक्ता एवं साम गायनाचार्य
मो. 09412742557
Email: shrutibhaskar57@gmail.com

☞ पृष्ठ 08 का शेष

आदित्य मुनि वानप्रस्थ....

व्याख्यान को सुन सकते हैं अथवा बम्बई में गाये जाते हुए गानों को सुनकर आनन्द उठा सकते हैं। यह सब वायु देवता की कृपा का फल है।

इस प्रकार हम समझ गये कि वायु मण्डल में जो पांच विशेष गुण पाये जाते हैं उनको इस वेद के मंत्र में कितने सुन्दर शब्दों से स्पष्ट वर्णन किया गया है। (1) वायु में गति का होना, (2) उसमें दिखलाने की शक्ति का होना, (3) संसार के प्राणी, वृक्ष, वनस्पतियों को जीवन प्रदान करने की शक्ति का होना, (4) उनके रक्षण और बल प्रदान करने की शक्ति, (5) शब्दों को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना। वायु मण्डल में ये पांच विशेष गुण इस मंत्र के सूत्र रूप में बतलाये गये हैं।

इसके अलावा उसके नियम ने इस शरीर की रचना इतने वैज्ञानिक ढंग से की है, जिसके अध्ययन से एक से एक वैद्य और डॉक्टर बन गये और बन रहे हैं।

अंत में कट्टर ईसाई पंथी प्रो. मैक्समूलर लिखते हैं–

"The Rigveda is the oldest book in the library of the World". अर्थात् ऋग्वेद, आर्य जाति की ही नहीं, विश्वभर की प्राचीनतम पुस्तक है।

ईश्वरीय ज्ञान वेदों की अनुगूंज आज विश्व की धरोहर में शामिल हो चुकी है। यूनेस्को के सूत्रों से जून 2007 को ऋग्वेद की 30 पाण्डुलिपियों को मेमोरी ऑफ दी वर्ल्ड रजिस्टर में शामिल किया गया है। अनन्तर उसके 7 जुलाई को अमेरीकी सीनेट के सत्र की शुरुआत वैदिक मंत्रों से हुई। इससे यह मान्यता स्थापित हो चुकी है कि विश्व ज्ञान में वेद ही आदिग्रन्थ है।

मु. पो. मुरारई, जिला–वीरभूम
(प. बंगाल) 731219
मो. 8158078011

☞ पृष्ठ 09 का शेष

How I occupied Myself ...

A few days later, I decided to make some additions to my little household and asked some of the servants to bring me a pup. A few days before my departure I got one but it was not a pretty thing and on the morning of the day of my departure from Mandalay, I returned it to the owner, having been promised a better one by the sweeper of the house. In the roof of the staircase, amongst the beams and raffers, lived a family of Mynas who administered music to me but one of the Sergeants took a fancy for them. The mother being too astute, he could not get hold of her but removed the two young ones to his home. This was done in the absence of the mother, who on her return, not finding her little ones, became utterly disconsolate and filled the whole house with bitter cries and pathetic lamentations. She hovered round her nest for a few days and then left it in despair, never to return again. Thus I lost the company of these good birds by the cruelty of one of my jailors, a man who had inherited the evil nature of both the English and the Indian and was entirely devoid of the good points of either.

On the morning of the 11th my two kittens had gone out for a ramble when I was removed bag and baggage to the railway station. There was no time to wait for their return as the Commissioner had told me that the special train was ready. The Superintendent and the Deputy Superintendent of Police wanted me to be quick. So the only pang that I felt in leaving that house was this forced separation from the two kittens. During my confinement I had been reading Byron,s "Prisoner of Chillon", and this little incident reminded me of these lines wherein he puts the following touching sentences in the mouth of the Prisoner at the time of his liberation.

"And thus when they appeared at last,
And all my bonds aside were cast,
These heavy walls to me had grown
A hermitage—and all my own!
And half I felt as they were come
To tear me from a second home,
With spiders I had friendship made,
And watch'd them in their sullen trade,
Had seen the mice, by moonlight play,
And why should I feel less than they?
We were all inmates of one place,
And I, the monarch of each race,
Had power to kill—yet strange to tell
In quiet we had learn'd to dwell,
My very chains and I grew friends,
So much a long communion tends
To make us what we are;—even I
Regain'd my freedom with a sigh."

I do not think, however, I can close this chapter without laying myself open to a charge of ingratitude if I were to omit paying tribute to the two Masters, whose constant company was a source of great strength and consolation to me. Lord Sri Krishna, one of the greatest Indian Masters, conversed with me in words of practical wisdom, pitched in immortal strain; and the celebrated poet of Shiraz spoke to me of love and of the troubles that inevitably followed the course of the latter. My troubles I thought had been brought about by love (love of principles and love of country) and therefore, the appeals and wailings of Hafiz went straight to the core of my heart and were a source of solace to me. I enjoyed "Hafiz" in my imprisonment much more than I had ever done before in my childhood, when I read it with my father. Besides these, I owe a great deal to the company of other friends and teachers whose writings kept up my spirits and afforded me occupation in this my first experience of loneliness. No one need ever despair of himself, who can have access to the noble company of these master minds, who are ever at his service, in any and every condition of life.

डी.ए.वी. जसोला विहार में पढ़ाया गया अनुशासन प्रियता का पाठ

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल के प्रांगण में वर्ष 2015–16 के लिए मानाभिषेक समारोह का आयोजन किया गया। विद्यालय में अनुशासन बनाए रखने के लिए तथा विद्यालय के सर्वांगीण विकास के लिए कई प्रतिभाशाली विद्यार्थियों को जीवन में निष्ठा, कर्त्तव्यपरायणता तथा अनुशासन प्रियता के महत्व से अवगत कराया गया। विद्यालय के प्रधानाचार्य श्री वी. के. वर्थवाल ने बच्चों का हौसला बढ़ाते हुए विद्यार्थियों को विद्यालय में अनुशासन बनाए रखने की शपथ दिलाई। इस प्रकार वर्ष 2015–16 के लिए नई उमंगों के साथ मानाभिषेक समारोह सम्पन्न हुआ।

Thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2015-17
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2015-17
Posted at N.D.P.S.O. ON 01-02/7/2015
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

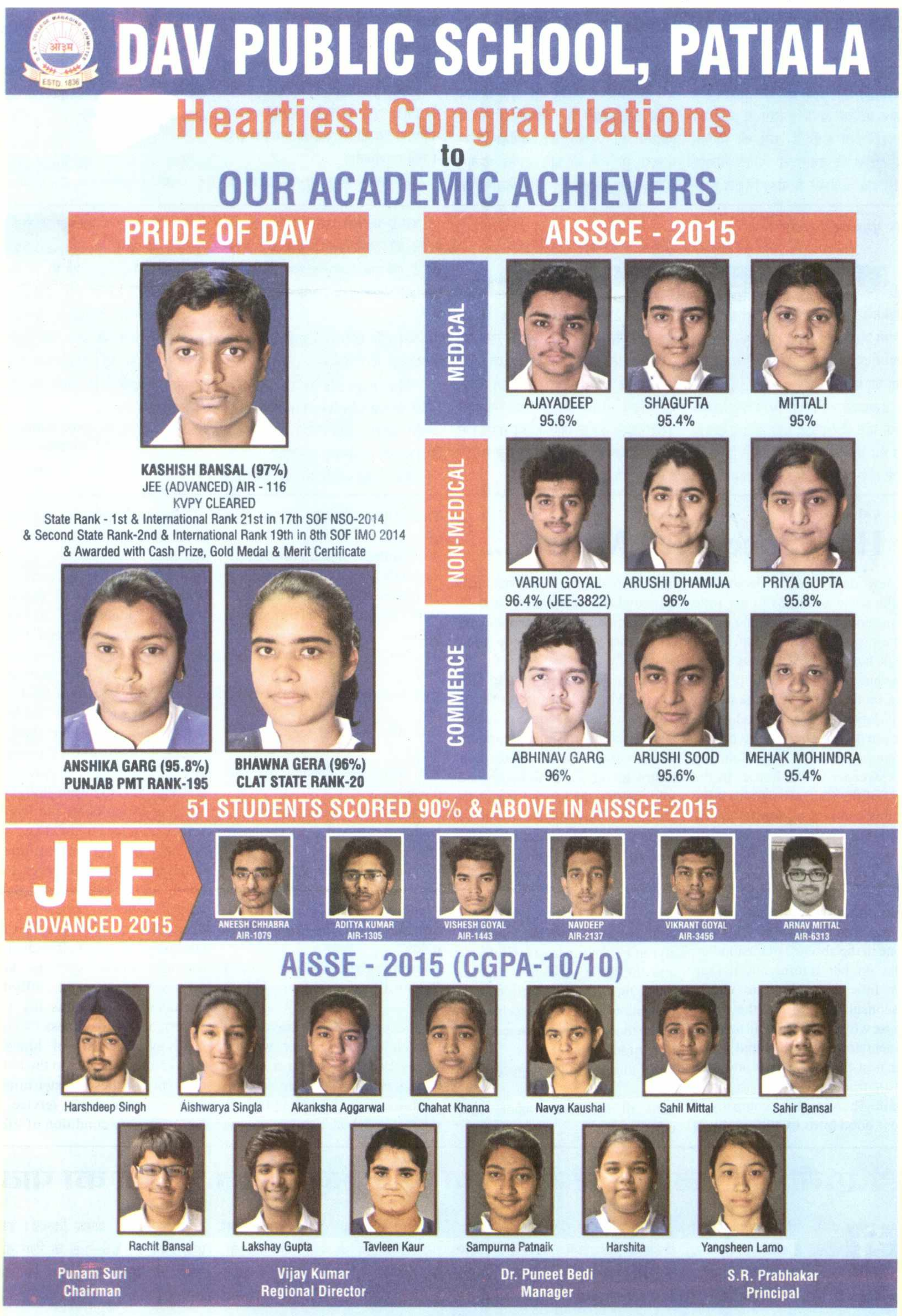

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा मंदिर मार्ग के लिए **एस.के शर्मा** द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित **अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.)** लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित एवं कार्यालय **'आर्य जगत्'** आर्यसमाज भवन मंदिर मार्ग नई दिल्ली से प्रकाशित मो.–9868894601, 23362110, 23360059 सम्पादक – **पूनम सूरी**